४५

पराग

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(माधुरी-संपादक)

सरस काव्य-ग्रंथ

आत्मार्पण	१)
भारत-गीत	॥)
भारत भारती	१)
जयद्रथ वध	॥)
मौर्यविजय	१)
रंग में भंग	१)
विरहिणी ब्रजांगना	१)
किसान	।=)
पत्रावली	।-)
वैतालिक	१)
पलासी का युद्ध	१॥)
अनाथ	१)
मेघदूत	१)
त्रिशूल-तरंग	॥=)
भारतीय गीतांजलि	॥।)
वीर-पंचरत्न	२॥।)
प्रिय प्रवास	२)
चोखे चौपदे	१॥)
चुभते चौपदे	१॥)
बुद्ध-चरित	२॥)
कविता-कलाप	३)
रामचरित चिंतामणि	२)
रामचरित-चन्द्रिका	॥)
पद्य प्रमोद	॥।)
साहित्य-सुषमा	॥)
पद्य पयोनिधि	॥)
काव्य-वाटिका	३)
बागवान	१।)
श्रांत पथिक	१)
ऊजड़ गाम	।=)
काश्मीर सुषमा	=)
एकांतवासी योगी	≡)
मनोविनोद	१)
गोपिकागीत	=)
श्रीगोखलेगुणाष्टक	=)
देहरादून	।=)
आराध्यशोकाञ्जलि	।=)
श्रीगोखलेप्रशस्ति	=)

मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

गंगा पुस्तकमाला का पैंतालीसवाँ पुष्प

पराग

(सरस कविताओं का संग्रह)

लेखक
रूपनारायण पांडेय

सरला, सुलक्षणा, सुवर्णा, रस-भीनी, नई
कामिनी सी कविता हरत कौन को न मन ?

प्रकाशक
गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

रेशमी जि० १)] सं० १९८१ वि० [सादी ॥)]

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल् एल्० बी०
गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीकेसरीदास सेठ
नवलकिशोर-प्रेस
लखनऊ

प० श्रीदुलारेलालजी भार्गव,
रईस, लखनऊ.

श्रद्धेय, प्रिय सुहृद्वर,

आप एक सच्चरित्र, सहृदय, साहित्य-मर्मज्ञ, हिंदी के उदीयमान सुलेखक और सुकवि हैं। मेरी और आपकी मैत्री बहुत दिन की है। मुझे आपकी विद्वत्ता, सच्चरित्रता और सज्जनता का गर्व है, और आपको मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ। आज उसी श्रद्धा के निदर्शन-स्वरूप यह साधारण भेंट लेकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। आशा है, जिस तरह कृष्णचद्र ने सुदामा के चार चाँवल प्रेम से स्वीकार किए थे, वैसे ही आप अपने एक अकिंचन मित्र के इस उपहार को स्वीकार करने की उदारता दिखावेंगे।

रूपनारायण पांडेय

वक्तव्य



विता एक ऐसी वस्तु है, जो मुर्दे में जान डाल देती है, नीरस को सरस बनाकर लोकोत्तर चमत्कार से बरबस हृदय को हर लेती है। इसी से इसके आस्वादन के आनंद को ब्रह्मानंद-सहोदर कहा है। ऐसी कविता करनेवाले कवि थोड़े ही होते हैं। परन्तु जो होते हैं, वे अपने देश के लिये गर्व और गौरव की चीज समझे जाते हैं। वाल्मीकि, कालिदास, पंडितराज जगन्नाथ या सूर, तुलसी, देव, बिहारी, मतिराम आदि के लिये आज भी भारत गर्व करता है।

ऊपर लिखी हुई विशेषता से युक्त काव्य यद्यपि इस समय नहीं बनते, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस ज़माने में कवि पैदा ही नहीं होते। इस युग के कवि बाबू भारतेंदु, पं० प्रतापनारायण मिश्र, राय देवीप्रसाद (पूर्ण कवि) आदि या वर्तमान सुकवि पं० नाथूरामशंकर शर्मा, पं० श्रीधर पाठक, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० गयाप्रसाद शुक्ल (सनेही), 'भारतीय आत्मा' आदि की सरस सूक्तियाँ किसे नहीं भातीं? कौन उनकी कविताओं पर मुग्ध नहीं होता? तात्पर्य यह कि इस समय भी कवि मौजूद हैं, और उनकी कविता प्राचीन कवियों की बराबरी की भले ही न हो, पर उसमें काव्य की विशेषताओं की—नवीनता और सरसता की—झलक अवश्य पाई जाती है।

हमारी समझ में कविता की उपमा फूल से दी जा सकती

है। फूल के बाहरी रूप-रंग से शब्दावली की और सौरभ से भाव की तुलना करना उचित होगा। अथवा कविता को एक रमणीय रमणी कह सकते हैं। शब्दावली तो उसकी साज-सज्जा है, और भाव उसका स्वाभाविक सौंदर्य। जिस कविता की शब्द-योजना सुदर और भाव उत्कृष्ट है, वही उत्तम, सर्वांग-सुदर है।

हमारे पाडेयजी भी अच्छी रचना करते हैं। पाडेयजी की कविताएँ हिंदी-भाषा के साहित्य मे एक विशेष स्थान रखती हैं। सुदर शब्द-योजना, सरसता, सरलता, उपयोगिता आदि गुणों के कारण हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं के पाठक शौक से उनकी कविताएँ पढ़ते हैं, इसका स्वय हमे भी अनुभव है। कविताओं मे दोष भी कुछ हो सकते है, परतु ससार में कुछ भी निर्दोष नहीं, यह समझकर पाठकगण क्षमा करेंगे।

पाडेयजी की कविताएँ एक अच्छी सख्या में पत्र-पत्रिकाओं में निकल चुकी हैं। पर उनका कोई सग्रह न होने के कारण उनमें अधिकाश अप्राप्य हो रही थीं। मित्रों के अनुरोध से पाडेयजी ने कुछ प्रकाशित और अप्रकाशित कविताओं का यह सग्रह कर दिया है। इस सग्रह की अधिकाश कविताएँ सरस्वती, हिंदी-मनोरजन, इंदु, भार्गव-पत्रिका माधुरी आदि पत्रों में प्रकाशित हुई हैं। आशा है, इससे पाडेयजी की कविता के प्रेमी इष्ट-मित्रो को सतोष होगा, और यह सग्रह स्थायी साहित्य में उचित स्थान पाकर उपयोगी कविताओं के द्वारा देश और समाज का कुछ उपकार कर सकेगा।

प्रकाश-कार्यालय, कानपुर
दीपावली १९८१ वि०

शिवनारायण मिश्र वैद्य

सूची

पराग



१. मंगलाचरण

गणेश-वंदना

सुदर सेंदुर-बिंदु लसै अरबिंद-से इदिरा-मदिर आनन ,
चारि भुजा वलयादि-बिभूषित, रत्न-जडे जुग कुडल कानन ।
तोतरे बैन बिनोद-भरे सुनि रीझि रह्यो ससिसेखर को मन ,
गौरि-गरे दोउ बाँह करे जय मगल-मूरति बाल-गजानन ।

जगदंबा से प्रार्थना

प्रतिभा की प्रभा को प्रमान परे नव भाव की भावना चेरी रहे ,
लहि पूरो प्रसाद अलंकृत ह्वे वर वानी बिनोद-घनेरी रहै ।
अनमोल कुबेर के कोषहु सों तिन अर्थन की लगी ढेरी रहै ,
पद-पकज-दासी, बिकासमुखी, जगदंब, सदा मति मेरी रहै ।

पराग



१. मंगलाचरण

गणेश-वंदना

सुदर सेंदुर-बिंदु लसै अरबिंद-से इंदिरा-मंदिर आनन,
चारि भुजा बलयादि-बिभूषित, रत्न-जडे जुग कुंडल कानन।
तोतरे बैन बिनोद-भरे सुनि रीझि रह्यो ससिसेखर को मन,
गौरि-गरे दोउ बाँह करे जय मंगल-मूरति बाल-गजानन।

जगदंबा से प्रार्थना

प्रतिभा की प्रभा को प्रभाव परे नव भाव की भावना चेरी रहै,
लहि पूरो प्रसाद अलंकृत ह्वै बर बानी बिनोद-घनेरी रहै।
अनमोल कुबेर के कोषहु सों तिन अर्थन की लगी ढेरी रहै,
पद-पंकज-दासी, बिकासमुखी, जगदंब, सदा मति मेरी रहै।

कृष्ण-वंदना

जय, जय, जय कृष्णचंद, सुंदर आनंदकंद,
गिरिधर, गो, गोप-वृंद ब्रज के रखवारे,
पूतना पछारि, मारि बक मुरारि, हे मुरारि,
लीन्हो त्रिभुवन उबारि, धर्म-पथ सुधारे।
भारत-रन-सूत्रधार, पांडव प्रन-करनधार,
जबहि भयो भूमि-भार तब ही निहि टार,
करुनानिधि, नंदलाल, दुष्ट-दलन, कंस-काल,
देवदेव, वासुदेव, देवकी दुलारे।

प्रेम-पारावार

ममता, समता त्यों छमा-छमता-सजुत छेम—
छिति पे छावनहार, प्रिय धन्य, धन्य, प्रभु प्रेम।
जय प्रभु प्रेम-पारावार।
मिटत तीनो ताप मेटत, छूटत विषय-विकार,
होत सीतल अमल हीतल और सुद्ध विचार।
रहत तुम महँ मगन जोगी, चहत स्रुति को सार,
लहत ब्रह्मानंद निरमल, बहत दृग जल-धार।
गर्व करि ज्ञानी गए थकि, नाहिं पायो पार,
होत जा पै लहर, सोइ तरि जात यह संसार।

---

२. जाति-विषयक

दिग्दर्शन

(१)

'कारण क्या है भारत की भारी अवनति का ?
भारतवासी जन-समाज की इस दुर्गति का ?'
यह आवश्यक प्रश्न किया है कभी आपने ?
नहीं किया, तो प्रश्न यही है आज सामने।
सोचसमझकर, मित्रवर, उत्तर इसका दीजिए,
अथवा मन एकाग्र कर मुझसे ही सुन लीजिए।

(२)

रहा सदा से एक धर्म ही भारत-जीवन,
धर्माधर्म-विवेक-युक्त थे यहाँ सभी जन।
वेद शास्त्र से ले पुराण तक धर्म-ग्रंथ है,
एक धर्म के लिये अनेकों चले पन्थ हैं।
'जो कुछ है, सो धर्म ही" यही यहाँ सिद्धान्त था,
अन्त्यज भी इस देश का धर्म-भीरु था, शान्त था।

(३)

वेद-मुकुर में मिलें धर्म ही के प्रिय दर्शन,
धर्म-तत्त्व का मूल खोजते हैं सब 'दर्शन'।

कृष्ण-वंदना

जय, जय, जय कृष्णचंद, सुंदर आनंदकंद,
गिरिवर, गो, गोप-वृंद, ब्रज के रखवारे,
पूतना पछारि, मारि सब सुरारि, हे मुरारि,
लीन्हो त्रिभुवन उबारि, धर्म-पथ सुधारे।
भारत-रन-सूत्रधार, पांडव प्रन-करनवार,
जबहि भयो भूमि-भार, तब ही तिहि टारे,
करुनानिधि, नंदलाल, दुष्ट-दलन, कंस-काल,
देवदेव, वासुदेव, देवकी-दुलारे।

प्रेम-पारावार

ममता, समता त्यों छमा-छमता-सजुत छेम—
छिति पै छावनहार, प्रिय धन्य, ध न्य, प्रभु प्रेम।
जय प्रभु प्रेम-पारावार।
मिटत तीनो ताप सेवत, छुटत त्रिषय-त्रिकार,
होत सीतल, अमल हीतल और सुद्ध विचार।
रहत तुम महँ मगन जोगी, चहत स्रुति को सार,
लहत ब्रह्मानंद निरमल, बहत दृग जल-धार।
गर्व करि ज्ञानी गए थकि, नाहिं पायो पार,
होत जा पै लहर, सोइ तरि जात यह संसार।

---

२. जाति-विषयक

दिग्दर्शन

(१)

कारण क्या है भारत की भारी अवनति का?
भारतवासी जन-समाज की इस दुर्गति का?"
यह आवश्यक प्रश्न किया है कभी आपने?
नहीं किया, तो प्रश्न यही है आज सामने।
सोच-समझकर, मित्रवर, उत्तर इसका दीजिए,
अथवा मन एकाग्र कर मुझसे ही सुन लीजिए।

(२)

रहा सदा से एक धर्म ही भारत-जीवन,
धर्माधर्म-विवेक-युक्त थे यहाँ सभी जन।
वेद-शास्त्र से ले पुराण तक धर्म-ग्रंथ हैं,
एक धर्म के लिये अनेकों चले पथ हैं।
'जो कुछ है, सो धर्म ही" यही यहाँ सिद्धांत था,
अन्त्यज भी इस देश का धर्म-भीरु था, शांत था।

(३)

वेद-मुकुर में मिले धर्म ही के प्रिय दर्शन,
धर्म-तत्त्व का मूल खोजते हैं सब 'दर्शन'।

धर्म-मूल तनु के निमित्त है वैद्यक विरचित,
हुआ धर्म के लिये गणित-ज्योतिष भी निर्मित।
धर्म-स्थापन के लिये—विधि-निषेध-दर्शक घने—
शासक, राज्य, समाज के धर्मशास्त्र सब है बने।

(४)

ऐसे ही सब शास्त्र धर्म का आश्रय लेकर,
सपादित कर रहे धर्म ही को, हो अनुचर।
समझाता कोई रहस्य है धर्म-तत्त्व का,
दिखलाता कोई प्रभुत्वमय पथ महत्त्व का।
कोई साधन धर्म के बतलाता है वेद से,
कोई शिक्षा धर्म की देता है मत-भेद से।

(५)

शास्त्रकार जो हुए, उन्हें बस, धर्म इष्ट था;
उनका हृदय प्रसन्न धर्म मे अभिनिविष्ट था।
धर्म-रहित धन, काम, देश, जीवन, समाज भी,
धर्म-शून्य ब्रह्माड, विश्व का राजकाज भी,
उन लोगों की दृष्टि में तुच्छ, हेय, अपदार्थ था,
उनको तो बस, धर्म ही पौरुष या पुरुषार्थ था।

(६)

इसी धर्म के लिये यहाँ रण भी होते थे,
सम्मुख लड़कर समर-सेज पर सब सोते थे।

धर्म साधने को विवाह की चाल चली थी,
धर्म पालने को समाज-शृंखला ढली थी।
अवलम्बन था धर्म ही उनके जीवन-चक्र का,
धर्म-विरोधी तुच्छ था सिंहासन भी शक्र का।

(७)

विद्या-शिक्षा और द्रव्य का संग्रह करना,
नीति-नियम-निर्माण नीच का निग्रह करना।
वैभव का विस्तार शक्ति से शान्ति बढ़ाना,
धर्म हेतु निःस्वार्थ भाव से था मन ठाना।
सत्य जानिए, धर्म ही प्राणों का भी प्राण था,
उनके लेखे धर्म ही उन्नति था, कल्याण था।

(८)

उनकी ही सन्तान आज निज नीति न जाने,
धर्म-ज्ञान ही नहीं, कौन फिर उसको माने!
अश्रद्धा हो गई पुरानी परिपाटी पर,
चोटी कटना चले भले होटल के अन्दर।
अन्यों के संसर्ग से आपस में लड़ने लगे,
लक्षण बुरे विनाश के दिखलाई पड़ने लगे।

(९)

मिटी देश की भक्ति, शक्ति भी साथ सिधारी,
स्वावलम्ब या स्वाभिमान तज हुए भिखारी।

सदाचार का नाश किया, व्यभिचार बढाया,
ले सुधार का नाम, किया संहार सवाया।
पुत्र शत्रु हो इस तरह नाश कर रहे देश का;
घर बाहर, हर काम में है व्यवहार विदेश का।

(१०)

आडम्बर है अधिक, मगर कुछ तत्त्व नहीं है,
अपने का अभिमान, सत्त्व या स्वत्व नहीं है।
ब्रिटिश-राज्य मे थी स्वतन्त्रता सिर्फ धर्म की,
उसको भी हम मिटा रहे, है बात शर्म की!
हा, कपूर-सा उड रहा धर्म-भाव कुछ रोज से,
हम गिरते जाते अहो, पतिता-पीन-उरोज से।

(११)

लेक्चर लाखों, कहो, धर्म पर हम दे डालें,
पर यह होना नहीं, धर्म को हम भी पालें।
हम तो है विद्वान, हमें बन्धन कैसे हो?
निष्कर्मी हैं, मुक्ति मिलेगी, वह जैसे हो।
वेदान्ती ऐसे यहाँ पुजते है कलि-काल मे,
योगी भी भोगी हुए कामिनि-काचन-जाल में।

(१२)

आस्तिकता मे आज घोर नास्तिकता छाई,
ईश्वर तो है, मगर न उसका डर है भाई!

करते कठिन कुकर्म नहीं डरते हैं मन में,
भडुओं के भी भक्त लगाते छापा तन में।
इस प्रकार चारों तरफ बुद्धि-विपर्यय हो रहा,
आर्य-जाति के लोप का जिसे देख भय हो रहा।

(१३)

इतने पर भी अभी नहीं कुछ बिगड़ा वैसा,
वेद-धर्म-संस्कार बना जैसा-का-तैसा।
इतने विप्लव हुए, धर्म का बीज बना है,
आचारों का याग प्रकट में अभी मना है।
चेष्टा करने से अभी हो सकता उद्धार भी,
तत्पर होने से तथा सत्य समाज-सुधार भी।

(१४)

अन्य धर्म अधिकार न अब तक जमा सके हैं,
वैदेशिक विश्वास न सबमें समा सके हैं।
आज नहीं हैं अन्य देश के धर्म पुराने,
पढ़ने से इतिहास नाम जाते हैं जाने।
केवल वैदिक धर्म ही अब तक आता है चला,
चली किसी की भी नहीं इसके आगे कुछ कला।

(१५)

'होता है अभ्युदय श्रेष्ठ का*" जो बतलाते,
उसका वे आदर्श धर्म वैदिक में पाते।

---

* Survival of the fittest

कर्म-योग, वेदांत आज अमरीका में है ;
रामतीर्थ-सा तीर्थराज अमरीका में है।
गीता का गुरु ज्ञान वह धर्म-कर्म से सगठित—
आज यहाँ से उठ गया; पर पृथ्वी पर है प्रथित।

(१६)

इस पर भी जो लोग उधर को कुछ झुकते हैं ,
वे फिर अपना नाश आप ही कर चुकते हैं।
गए इधर से, उधर न अपना कुछ भी पाया ;
पाला पापी पेट, पिता का नाम मिटाया।
किंतु, हर्ष की बात है, इने-गिने कुछ जीव हैं—
जो इस भारतवर्ष के बचे-खुचे सुग्रीव हैं।

(१७)

अब भी पहले के कुमार्गगामी, या नास्तिक ,
अथवा आडंबरी धूर्त, कहने के आस्तिक ,
भूल-भटककर खूब पाप में नख-शिख डूबे ,
आते हैं इस ओर, छोड़कर सब मनसूबे।
अंत-समय उनको मिले शांति इसी निज धर्म से ;
नाम अमर वे कर चले एक-आध सत्कर्म से।

(१८)

काशमीर से कुमारिका तक एक वार भी
जो डालेगा दृष्टि, करेगा कुछ विचार भी

हिंदू-धर्म-महत्त्व हृदय में अंकित होगा ;
उससे अपना नाम कभी न कलंकित होगा।
भारत में चारों तरफ लाखों तीर्थ-स्थान हैं,
जिनमें होते नित्य ही जप, तप, पूजा, दान हैं।

(१६)

खोदी जाती भूमि जहाँ, उस जगह तुम्हारे
याग-यूप या योग-रूप ही मिलते सारे।
नदियों में भी आज फूल चंदन से चर्चित
बहते हैं। हर घड़ी रहे प्रतिमा भी अर्चित।
यहीं पहाड़ों पर मिलें योगी लोग कहीं-कहीं ;
धन्य अनन्य विशेष यह अन्य देश में है नहीं।

(२०)

जैसे देखो, और जिधर देखो भारत में,
धर्म-भावना यहाँ मिलेगी सबके मत में।
धर्म-कर्म की भूमि इसी से इसको कहते ;
इसमें ही अवतार ईश के होते रहते।
उन्नति होनी है नहीं धर्म छोड़कर देश की ;
शव-सेवा के तुल्य है नाहक नक़ल विदेश की।

(२१)

धर्म-ध्यान के बिना त्याग हो नहीं सकेगा ;
धर्म-भाव से हीन सभी में स्वार्थ वकेगा।

नैतिक वाद-विवाद और सामाजिक झगड़े,
स्वार्थ-सिद्धि के लिये बड़े होते हैं बखेड़े।
ऐसा है बस, धर्म ही जहाँ न स्वार्थ-विकार है;
मिलने का सबसे सरल पथ तो यही उदार है।

(२२)

त्याग बिना उपकार जाति का हो न सकेगा,
कोई भी दुर्दशा देश की खो न सकेगा।
क्या समाज-संस्कार, और क्या धर्म बढ़ाना,
क्या अपना उद्धार, और क्या उन्नति नाना,
जो कुछ, जब, जिसने, जहाँ मुखिया हो करके किया
उसने स्वार्थ-त्याग को धर्म समझ अपना लिया।

(२३)

राजा, राव, रईस विषय-सुख के हैं कीड़े;
उठा सकेंगे नहीं कष्टमय व्रत के बीड़े।
महत्कार्य सब कभी न केवल धन से होते;
तेज और उत्साह चाहिए, तब वे होते।
धर्म-प्रचार दरिद्र ही इस पृथ्वी पर कर गए;
आत्मिक बल से विश्व में धर्म-भावना भर गए।

(२४)

भारत में जो आर्य-भूप शासन करते थे,
वे वनवासी विप्र-वृन्द का दम भरते थे।

ब्राह्मण ही सब छोड़ धर्म-पथ दिखलाते थे ;
फलाहार कर सदाचार वे सिखलाते थे ।
न्याय-निपुण मुनिवर्य्य ही नियम बनाते थे यहाँ ;
जिससे वर्णाश्रम सभी चैन मनाते थे यहाँ ।

(२५)

ब्राह्मणगण ने स्वार्थ-त्याग जो सिखलाया था ,
कर्मयोग का धर्म-मार्ग जो दिखलाया था ,
उससे जब वे डिगे, और भी फिसल पड़े मन ;
बाधा-विघ्न अनेक मोह, मद आदि अड़े तब ।
अब भी जो ब्राह्मण कहीं हो जावें टटकर खड़े ,
तो हो जावें सिद्ध सब काम बड़े से भी बड़े ।

(२६)

विप्र-वृन्द, अब उठो, समय की गति को देखो ;
करके खब विचार सर्व-सम्मति को देखो ।
सोचो स्वय उपाय, और अगुआ बन जाओ ।
हरो हीनता, स्वाभिमान का पाठ पढ़ाओ ।
स्वावलम्ब की राह में छोड़ो सब सङ्कीर्णता ,
दूर करो सद्भाव से इस समाज की जीर्णता ।

(२७)

तुमने ही बन व्यास वेद-सग्रह कर डाला ;
धर्मशास्त्र के ग्रन्थ रचे, नियमों को पाला ।

क्षत्रिय राजा है सुवर्ण के सिंहासन का ;
ब्राह्मण राजा है हरेक हिंदू के मन का।
साम, दान, भय, दंड से बाहर शासक हैं नृपति ;
किंतु हृदय के राज्य का अधिपति है ब्राह्मण सुमति।

(३४)

जटाजूट, वल्कल विभूति को धारण करते ;
फलाहार कर विजन वनों के बीच विचरते ;
न्याय-निष्ठ निस्पृह निरीह, ज्ञानी, सब लायक ;
ब्राह्मण ही हैं आर्य-जाति के नेता, नायक।
अब भी कुछ ब्रह्मण्यता भारत में अवशिष्ट है,
जिससे औरों से अभी हिंदू-जाति विशिष्ट है।

(३५)

देखो ब्राह्मणदेव, आचरण शीघ्र सुधारो,
छोड़ो भोग-विलास, योग से मन को मारो।
ब्रह्मण्यता-विचार अगर उठ गया देश से
तो होगा संहार आप ही का विशेष से।
मृतक धर्म की चिता में अग्नि भयंकर हो प्रकट—
सब समाज को भस्म कर रख देगा अति विकट।

(३६)

इससे अब तुम धर्म तत्त्व को पहले जानो ;
युक्ति-तर्क-विज्ञान-सहित फिर उसे बखानो ;

समझा दो, सब सदाचार विज्ञान-भरा है ;
उसमें निष्फल, मूढ़ भावना नहीं ज़रा है।
छोटे-से-छोटा नियम सदाचार का ठीक है ;
उसे कहे जो 'मूर्खता', उसका ज्ञान अलीक है।

(३७)

महादेव, फिर उठो देश का हित करने को,
रोग शोक, दारिद्र्य, दुःख, दुर्मति हरने को।
ज्ञान, प्रेम, आनंद प्राप्त कर कर्मी हम हों,
आलस, बैर, विकार, वासना, विलय कम हों।
देखे फिर सारा जगत्, क्या है सच्ची सभ्यता ;
पराकाष्ठा धर्म की और भाव की भव्यता।

आर्य

(१)

हे जननी, हे जन्मभूमि, प्राणों से प्यारी,
हम सब तेरे पुत्र आज तुझ पर हैं वारी।
तू है पुण्य स्वदेश, स्वर्ग से बढ़कर हमको—
यह जाना है आज, छोड़कर पहले भ्रम को।
जय विश्व-मुकुट-मणि, गुण-निलय,
जय राम-कृष्ण के देश शुभ,

(२)

सतानें सब एक तान मे एकतान है ;
छोड़े सब खटराग, प्राप्त कर रही ज्ञान है ।
भाई भाई से न आज ऐंठा फिरता है,
वृता औरों का न आज, अपना बिरता है ।
सब फूले नहीं समा रहे सुन स्वराज्य-सदेश को ;
है हम अपनाते जा रहे अपनी भाषा, भेष को ।

(३)

बाधाएँ हों लाख, मगर हम नहीं हटेंगे ;
उमँग और उत्साह हमारे नहीं घटेंगे ।
कष्ट कठिन हों, कृष्ण-कृपा मे कभी कटेंगे ;
अजी, कभी तो मोह-द्रोह के हृदय फटेंगे ।
हम सब होंगे कर्तव्य-रत भव्य नव्य युग मे कभी ;
ये दोष न होंगे उस समय, जो कुछ हममें है अभी ।

(४)

जाति-सेवक

(१)

नश्वर होकर सदा जाति-हित जो करता है,
बाधाएँ हों लाख नहीं उनसे डरता है,
निज सुख-दुख की जिसे नहीं पर्वाह ज़रा है,
रोम-रोम में जाति-प्रेम का भाव भरा है,
जो अपने कर्तव्य में पर्वत-जैसा अटल है,
जन्म उसी का धन्य है, जीवन उसका सफल है।

(२)

लाखों लेते जन्म, नित्य लाखों मर जाते,
किंतु न उनका कहीं नाम भी हम सुन पाते।
खाते, पीते और विषय भोगें हम जैसे,
पशु-पक्षी भी मित्र, वही करते हैं वैसे।
बस, जो इस संसार में जाति-समुन्नति कर गया,
वही अमर नश्वर सदा, यद्यपि वह हो मर गया।

(३)

यही समझकर और सोचकर, आओ भाई,
हम भी कर लें, यथाशक्ति निज जाति-भलाई।
दीन और धन-हीन जाति में जिनको पावें,
उनको हम देकर सहायता गले लगावें।
देख दरिद्र दिमाग से करें कभी नफ़रत नहीं,
गले लगावें प्रेम से, इसमें हो गफ़लत नहीं।

(४)

जो अनाथ हों, वे सनाथ हो पाकर हमको ;
तन, मन, धन से सदा रखें जारी इस क्रम को ।
खोलें कॉलेज, स्कूल अनाथालय भी अपने ,
स्थापित कर दें और पुस्तकालय भी अपने ।
विधवाएँ जो बालिका, उनको देख पसीजिए ,
उनका भी दुख मेटिए, कुछ उपाय कर दीजिए ।

(५)

लड़की-लड़के हैं समान शिक्षा अधिकारी ,
स्त्री शिक्षा का है विरोध सचमुच भ्रम भारी ।
दोनों में शिक्षा-प्रचार बहुतायत से हो ,
इसका भी उद्योग अगर पंचायत में हो ,
सब कुरीतियाँ मेट दे तो शिक्षित सन्तान वह ,
कुसंस्कार की जड़ उखड़ जाय सहज में इस तरह ।

(६)

कहें कहाँ तक, कोटि काम कुल करने को है ,
हृदयों से मात्सर्य, मोह, मद, हरने को है ।
फिर उनमें उत्साह आदि गुण भरने को है ,
ऋद्धि, सिद्धि, निधि, खड़ी सामने वरने को है ।
केवल कसकर कमर को जुट जाने की देर है ,
कामियाब होंगे, अगर अपनी तबियत शेर है ।

(७)

रात गई है प्रात, मोह-निद्रा से जागो,
आँखें खोलो, और गौर कर आलस त्यागो।
ज्ञान सूर्य का उदय हुआ फिर पूर्व-दिशा में,
पश्चिम में जो था, अदृश्य हो इवर निशा में।
सभी जातियाँ वेग से हैं आगे को बढ़ रही,
चटपट उन्नति शिखर पर झपट-झपटकर चढ़ रहीं।

(८)

फिर क्या पिछड़े पड़े तुम्हीं यों रह जाओगे?
होकर क्या पद-दलित ठोकरें ही खाओगे?
लोग हँसेंगे देख, और तुम शरमाओगे?
हमें नहीं विश्वास कि यों तुम मिट जाओगे।
यह अपमान न सह सको, तुममें अब भी जान है,
निज कुल का अभिमान है, आन-बान है, शान है।

(९)

ईश्वर से प्रार्थना करो बस, यही हृदय में—
"जाति-हितैषी रहें, कहें, सो करें समय में।
फूट घटे, हठ हटे, कटे भ्रम-जाल हमारा,
खिले हृदय की कली तुम्हारा मिले सहारा।
अपने पैरों आप हों खड़े, बड़े हों ज्ञान से,
दुरित, दोष, दुख दूर हों, देव, दया के दान से।"

३- देश-संबंधी

प्रोत्साहन

(१)

"हाँ पुत्रो, किसलिये व्यथित हो, लम्बी साँसे लेते हो ?
होकर क्यो इस तरह निकम्मे, दोष भाग्य को देते हो ?
उठो, उठो, क्यों शिथिल पडे हो ? देखो, सुदिन सवेरा है
ब्रिटिश-तेज के उजियाले से रहा कही न अँधेरा है।

(२)

केवल 'हाय, हाय' करने मे लाभ तुम्हे क्या होना है ?
पूर्व समय के लिये बिलखना, वृथा समय को खोना है ?
औरों की आशा पर रहना, स्वय अपाहिज बनना है।
स्वावलंब ही सत्य सहायक आश्रय-दाता अपना है।

(३)

दूर देश मे दुःख उठाना, बात हुई साधारण है
अपने घर में आप भूख से मरते हो, क्या कारण है ?
तुम चाहो, तो सभी जगत् को अन्न-दान कर सकते हो,
तीन लोक की व्यथा सहज ही दम-भर मे हर सकते हो।

(४)

जैसे ये प्राचीन पुरुष, वैसे ही तुम भी मानव हो
फिर क्यों जो कुछ उनको सम्भव, तुमको वही असम्भव हो ?
उनके-जैसे अंग और प्रत्यंग तुम्हें भी सभी मिले
फिर क्यों वे सब बने धुरंधर, तुमसे तिनका तक न हिले ?

(५)

इसका और नहीं कुछ कारण, तुम अपने को भूले हो :
अपने स्वाभाविक बल, विक्रम, विज्ञपने को भूले हो।
अपने ऊपर तुम्हें आप ही जब तक है विश्वास नहीं,
जब तक स्वाभिमान-सा अनुगत, सुहृद तुम्हारे पास नहीं,

(६)

हीन न होने पर भी तब तक दीन रहोगे ऐसे ही,
घात और प्रतिघात समय के सदा सहोगे ऐसे ही।
निश्चय जानो, तुममें कुछ भी, मेरे पुत्रो! कमी नहीं :
तुम मेरे हो पुत्र, तुम्हारे सदृश जगत् में अभी नहीं।

(७)

कपिल, कणाद, व्यास तुममें ही हो सकते हैं फिर उत्पन्न ;
राम कृष्ण, अर्जुन, विक्रम भी तुम सबमें ही हैं प्रच्छन्न।
शिवि, दधीचि, बलि, हरिश्चंद्र भी हो सकते हो तुम प्यारे!
होना क्या है कठिन, वंशधर जब उनके ही हो सारे ?

(८)

पालन कर कर्तव्य जगत् के तुम भी गुरु बन जा सकते
प्रथम प्रतिष्ठा पा सकते, फिर पुरुष-सिंह कहला सकते।
इच्छा करने से तुरत तुम हो सकते सबके समकक्ष,
हो सकते समकक्ष न केवल, बन सकते सबके अध्यक्ष।

मातृमूर्ति

(१)

कहते हैं सब लोग हमें, हम दीन-हीन हैं, भिक्षुक हैं
कुछ भी हो, हम लोग अभी अच्छे होने के इच्छुक हैं।
सच है, वैभव नहीं रहा ; पर बुद्धि हमारी दीन नहीं ;
पौरुष कम है ; मगर हुए हैं मनुष्यत्व से हीन नहीं।

(२)

है हममें मतभेद ; मगर वह धर्म, कर्म, शिक्षा में है,
राष्ट्र-नीति में, धर्म-नीति में, उद्यम में, भिक्षा में है।
किंतु देश की सेवा का जब प्रश्न सामने आवेगा,
तब हममें हरएक एकमत होकर हाथ बढ़ावेगा।

(३)

देखो, वह आफ्रिका-प्रवासी भारतवासी कहता है—
"रहे कहीं, पर वहीं हमारा भारत हममें रहता है।

काले, किंतु निराले हैं, इस दुनिया-भर में, यहीं नहीं ;
कष्ट सहेंगे, किंतु रहेंगे हीन भाव से कहीं नहीं।"

(४)

देखो, उधर स्वयंसेवक-दल देश-हितैषी आता है ;
बाढ़ियों की भीषण घटना में तन मन से लग जाता है।
दक्षिण, बंग, विहार, उड़ीसा, सभी प्रांत मिल जाते हैं ;
एक हृदय से एक शक्ति से अपना दुःख हटाते हैं।

(५)

कीचड़-कांकड़-कंटक-विषधर-बाधाओं पर दृष्टि नहीं ;
दुस्तर इन्हें समुद्र नहीं है, दुस्सह आँधी, वृष्टि नहीं।
धन्य-धन्य ये वीर युवक, इनमें पैठा परमेश्वर है ;
आर्तत्राण-परायण में नारायण में क्या अंतर है?

(६)

यह आदर्श नई आशा, उत्साह हृदय में लाता है,
स्वावलंब का, स्वाभिमान का गौरव आगे आता है।
देश-भक्ति की शक्ति हृदय में लहरें लेने लगती है ;
मातृमूर्ति की उज्ज्वल आभा आँखों-आगे जगती है।

(७)

मन करण कहे— हे जननी, मैं तेरा, तू मेरी है ;
मेरे लेखे ज्ञान-ध्यान तू, तू रत्नों की ढेरी है।

तेरी रज का एक-एक कण हीरे से भी बढ़कर है,
तेरी धूल स्वर्ण-सिंहासन से भी मुझको सुंदर है।

(८)

तू ही धर्म कर्म जप तप है, तू ही योग, भोग, सब है,
तेरे तुल्य विश्व में अब भी गौरव में कोई कब है?
शक्ति-रूप से आकर आगे अन्नपूर्णा-रूप दिखा,
अपने की ममता माता, दे हम लोगों को आज सिखा।

(९)

हम देखें दश भुजा दिशाएं अस्त्र-शस्त्र से शोभित हैं।
दिए वराभय हमें, तदपि खल-हृदय सभय विक्षोभित है।
प्रतिभा-प्रभा प्रकट हो मुख पर विद्या-ज्योति बढ़ाती है,
उसके बीच 'तिलक' की शोभा दूनी द्युति दिखलाती है।

(१०)

सिर पर मुकुट, जड़े हैं जिसमें 'राम'-'कृष्ण'-से रत्न बड़े,
कर्णफूल-से 'कर्ण', 'युधिष्ठिर' युगल कर्ण में देख पड़े।
कंठी में 'वाल्मीकि', 'व्यास', कवि 'कालिदास' छवि पाते हैं,
बाहु-विभूषण में 'प्रताप', 'श्रीचंद्रगुप्त' आ जाते हैं।

(११)

कंठ-मालिका में अनंत लालों की कीर्ति कांति फैली,
जिसके आगे 'इमिटेशन' की हो जाती आभा मैली।

है समुद्र मेखला रत्नमय, 'धूप'-छाँह' के हैं कपड़े
पुरुष 'सिंह' होकर पद-सेवी भक्ति-भाव से पास खड़े।

(१२)

आत्मत्याग 'गणेश' गोद में, पूजनीय जो प्रथम हुआ,
'कार्त्तिकेय' कर शक्ति लिए 'उद्देश्य-सिद्धि का नियम' हुआ।
सत्साहस है सिंह, सत्य-सङ्कल्प-प्रासनी-आसीना।
मोह-'महिष'-मर्दिनी देवि, जय, जय, जय भक्तजनाधीना।

(१३)

चरण-तले मैया के मिलकर दीक्षा ग्रहण करो आओ,
प्रेम-खड्ग से पशु-प्रवृत्ति-बलिदान करो, फिर नर पाओ।
काल-कुंड में तेज-अग्नि रख उद्यम का ईंधन धर दो,
दुर्मति, दुर्गति दुख, दरिद्रता सब उसमें स्वाहा कर दो।

(१४)

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई,
कोटि कंठ से मिलकर कह दो—"हम सब हैं भाई-भाई।
पुण्यभूमि है, स्वर्ण-भूमि है, जन्मभूमि है देश यही,
इससे बढ़कर, या ऐसी ही, दुनिया-भर में जगह नहीं।"

अहिंसा-संग्राम

(१)

दुःशासन पकड़े खड़ा भारत-मा के केश;
इस अनीति के दृश्य से क्षुब्ध हो उठा देश।

(२)

जिगर में जोश भरा भरपूर, छोड दुनिया के सारे काम ;
करें कुछ दुःख देश का दूर, अमर कर जावें मरकर नाम ।
सतोगुण और तमोगुण-बीच, छिड़ा है देवासुर-सग्राम
दबाना चाहे पशु-बल नीच, आत्मबल को करके बदनाम ।

(३)

किंतु यह उसका निंद्य प्रयास, कहाँ तक लेगा 'ला' की आड़ ?
हमारा अटल आत्मविश्वास, अन्त को देगा उसे पछाड़ ।
महात्मा गाँधी का उपदेश, बना देगा हम सबको योग्य ;
गुलामी से छुटकर यह देश, बहुत जल्दी होगा आरोग्य ।

(४)

कृपा है प्रभु ही की इस ओर, मिला है यह सेनापति वीर ,
किया अफरीका में अति घोर समर, पर हटा नहीं जो वीर ।
उसी के पीछे रहकर मित्र, करें निज जननी का उद्धार ;
हमारा है उद्देश्य पवित्र, झुकेगी निश्चय यह सरकार ।

(५)

नहीं शंका की है कुछ बात, स्पष्ट है इसका शुभ परिणाम ;
'दास', 'नेहरू', 'लाला' पर घात, जेल-जीवन, जय का पैगाम ।
प्रतिष्ठा, निष्ठा, शिष्टाचार, आत्मविश्वास हमारे दास ;
शांति, संयम के उच्च विचार, यही हथियार हमारे पास ।

(६)

स्वदेशी का है तीखा बाण, धैर्य धनु, स्थिर है लक्ष्य स्वराज्य ;
करेंगे भरसक आर्तत्राण, कपट-पटुता, कटुता है त्याज्य ।
प्रेम का वर्म, धर्म का जाल, कर्म-तलवार वार-पर वार ;
अहिंसा की हो ऊँची ढाल, दमन का स्वागत हो हर बार ।

(७)

रुके हों हाथ, बढ़ें बस पैर, न पीछे हटने का लें नाम ;
विजय है, या यमपुर की सैर, विमुख होना कायर का काम ।
छिड़ा है ग्राम-ग्राम संग्राम, भिड़ा है शहर-शहर हर मर्द ;
हमारी बहनें भी आराम छोड़कर मिलीं, हुईं हमदर्द ।

(८)

भ्रांति जब हो जावेगी दूर, शांति तब आ जावेगी आप ;
मोह-मत्सर होगा काफ़ूर, न होंगे द्रोह, दंभ दुख, पाप ।
सत्ययुग का होगा साम्राज्य, साम्य, मैत्री का शुभ आदर्श ;
आत्मनिर्णय का होगा राज्य, और यह उन्नत भारतवर्ष ।

याचना

कर कृपा देश पर स्वामी ।
मिटे दोष, दारिद्र्य दुरित दुख दुर्मति की बदनामी ;
धरें धर्म का ध्यान हृदय में, करें न उसमें खामी ।
रहें न एक देश में कायर, क्रूर, कुटिल, खल, कामी ;

हों सब सच्चे आर्य-जाति के बचें मनु-अनुगामी।
भिक्षा-भक्ति न शिक्षा से हो मन भावे न गुलामी।
स्वावलम्ब-प्रिय, स्वाभिमान-युत हों स्वराज्य के स्वामी।
निज ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर बनें विप्रवर नामी,
क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मिलकर हो देश-भक्ति के हामी।

सूर्योदय

(१)

सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ।
थी मोह-निशा भारत-भर में, अज्ञान-तिमिर घेरे घर में,
हम हेय हुए सचराचर में, जड़ जीवन—वह भी पर कर में,
बल बुद्धि-शुद्धि का घात हुआ
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ।

(२)

औरों से आदर माँग रहे, हम बनकर पूरे स्वाँग रहे,
जापानी देते बाँग रहे, हम सोए पीकर भाँग रहे,
यों अध पात-उत्पात हुआ,
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ।

(३)

इतने में ईश्वर सदय हुए, श्रीतिलक अरुण-सम उदय हुए,
मतान सजग उस समय हुए, सूझा हित अपना, अभय हुए,

हठ, पक्षपात का पात हुआ ।
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ ।

(४)

पथ कर्मयोग का साफ किया, सब तत्त्व स्वत्व का बता दिया,
आज़ाद रहा, जब तलक जिया, आदर्श रख गया है बढ़िया,
नह कभी न भ्रम से मात हुआ ।
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ ।

(५)

थे लोकमान्य सामान्य नहीं, है लोकमान्य-सा मान्य नहीं,
अब वैसा और वदान्य नहीं, था इष्ट देश, धन-धान्य नहीं,
वह भारत का 'सुकरात' हुआ ;
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ ।

(६)

वह जैसे अन्तर्द्धान हुआ, गाँधीजी का आह्वान हुआ,
सब तरफ ध्येय का ध्यान हुआ, कर्तव्य-बुद्धि का मान हुआ,
निश्वासघात का घात हुआ ;
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ ।

(७)

बारीक विदेशी वस्त्र तजे, मोटे खद्दर से अंग सजे,
दिखलाता चर्खा बड़े मजे, है मददगार सबका गरजे,
जरियए-असर-औकात हुआ ;
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ ।

(८)

नरमो-गरमो की बातों में, राजा-रकों की घातों में,
त्यों अमन-दमन के नाता में, देसी-परदेसी खाता में,
है अधिक घात-प्रतिघात हुआ
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ।

(९)

है राष्ट्र-प्रेम का रवि निकला, अंधेर-अँधेरा भी सिकला,
बढ़ रही देश में शक्ति-कला, होगी अपने मन-माफिक 'ला',
सच्चा स्वराज्य-पथ ज्ञात हुआ
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ।

(१०)

हम सफल क्यों न हो इस ढब में? है कमी कौन-सी हम सबमे?
झूठे वादों मे, अब-तब में, फिर दमन-नीति के करतब में,
नौकरशाही का पात हुआ,
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ।

(११)

ममता, समता क्षमता देगी, जनता को जेल जगा देगी,
यह शांति अशांति मिटा देगी, चर्खे से चर्ख हिला देगी,
कर्तव्य यही दिन-रात हुआ।
सूर्योदय हुआ, प्रभात हुआ।

विजय में विश्वास

(१)

सिद्धि है आगे खडी सदेह, विजय मे अब क्या है संदेह ?
मिट रहा मद्यपान का पाप,
किफ़ायतशारी आई आप,
न अब रहने का पर-सताप,
हो रहे है शुभ कार्य-कलाप,
मिले हिंदू-मुसलिम सस्नेह विजय मे अब क्या है सदेह ?

(२)

कचहरी के खर्चे, फिर घूस
देश का रक्त रही थीं चूस,
किया सब अमले को मायूस,
छुके क़ानूनी दक़ियानूस,
बढी है पचायत गुण-गेह विजय मे अब क्या है सदेह ?

(३)

विदेशी कपड़ा जो बारीक,
बड़ा बोदा नुमायशी ठीक,
तज दिया उसको हो निर्भीक,
आ गया अब स्वराज्य नज़दीक।
किया गाढे से शोभित देह : विजय में अब क्या है संदेह ?

असहयोग

करें उनसे कैसे सहयोग ?

सभी तरह से जो करते हैं अत्याचार-प्रयोग,
जिनको हुआ असाध्य सब तरह भेद-भाव का रोग। करें०।
जो गरूर में चूर दूर ही रहते हमसे लोग,
तृण-सा तुच्छ समझते हमको, उनका उचित वियोग। करें०।
निबल निहत्थों पर जो करते शेख़ी, शस्त्र-प्रयोग,
जो सर्वथा तुले बैठे हैं लाने को दुर्योग। करें०।
दुनिया को जो न्याय शांति का दिखलाते थे ढोंग,
अब खुलकर कर रहे स्वार्थ के साधन का उद्योग। करें०।
कौल-करार हुए सब झूठे, पाकर आज सुयोग,
रद्दी कागज करें प्रतिज्ञा-पत्रों को जो लोग। करें०।
राष्ट्र-भक्त जनता पर लाते राजद्रोह-अभियोग,
तरह-तरह से उसे दबाते पाकर सदा सुयोग। करें०।
कभी न सुनते सरल प्रजा के जो कि दुःख-अनुयोग,
उनसे तो सर्वथा उचित है उसी तरह प्रतियोग। करें०।
'प्रेस्टिज' पर जो मरते, हरते नहीं दुःख के भोग।
मनमानी करके कहते हैं—यह है नीति-नियोग। करें०।
अविरराम जो, उसे बढ़ाया, उसका किया प्रयोग।
भारतवासी भी अब उनका करते हैं उपयोग। करें०

अब तो भारत असहयोग का लेकर शस्त्र अमोघ,
पराधीनता-पाश काटने का करता उद्योग। करें०।

चक्र सुदर्शन

यह चर्खा चक्र-सुदर्शन है
मनोहर जिसका दर्शन है।
किया निरतकर्मा गाँधी ने इसका पुन प्रचार,
दिया जनार्दन जनता के कर करने को उद्धार।
यही सुख-स्वराज्य साधन है;
यह चर्खा चक्र-सुदर्शन है।
मय-मचेस्टर की माया का मोह मिटानेवाला,
दु ख-दैन्य दानव-दल दलकर उन्हें हटानेवाला।
बली-अतन यह वामन है;
यह चर्खा चक्र-सुदर्शन है।
इसके चक्कर से चक्कर में आया लकाशायर;
घनचक्कर बन रहे विदेशी वस्त्रों के सौदागर।
हिला पशु-बल का आसन है,
यह चर्खा चक्र-सुदर्शन है।
असहयोग का आज छिड़ा है देवासुर-संग्राम;
हमें विजय-लक्ष्मी यह देगा, बड़ा करेगा काम।

यहाँ की यह मशीनगन है;
यह चर्खा चक्र-सुदर्शन है।

हमारा प्रण

इसी चर्खे से मशीनों को चरखा करके छोड़ेंगे
इसी से देश में दौलत की बरखा करके छोड़ेंगे।
न हम अब भी अगर चेते, तो पशु-बल के सभी हामी,
यहाँ की सारी सरसब्ज़ी को चरखा करके छोड़ेंगे।
मिलेगा फिर नहीं ताना जो ताना-बाना अब ताना;
हम अपने वीर बाने का न डर खा करके छोड़ेंगे।
न होगी हैट-नेकटाई, न कालर और पतलूने;
हम इँगलिश-कोट को फिर से अँगरखा करके छोड़ेंगे।
कैद-तनहाई, सभी झेलेंगे हँस-हँसकर;
'शान्ति' के सिक्के को परखा करके छोड़ेंगे।

राष्ट्रीय गीत

(१)

जगत्-हितम्, त्रिभुवन-पूजितम्,
अजितम् अमितम्, भारतम्। वंदे०।
एकत्रिंश-कोटि-सुत-कृत-प्रणाम-प्रसन्नम्,
द्विषष्टि-कोटि-करैर्बहु बल-सपन्नम्,
सुखिनम् स्वजनम् कुरु एनम्;
सुरपुर-सोदरम्, नमामि सुंदरम्,
इंदिरा-मंदिरम् भारतम्। वंदे०।
तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु,
तुम्हीं शंभु, तुम्हीं जिष्णु,
त्व हि सत्त्व समस्ते।
विश्व में तुम्हीं हो आर्य,
धन्य हैं तुम्हारे कार्य,
सब ही तुम्हारी महिमा गावें; नमस्ते।
त्व हि भीष्म सत्यव्रतप्रतिपालक,
पार्थो, लवो वीरबालक,
कृष्णो हि राष्ट्रचालक,
नमामि त्वाम्।
नमामि श्रेष्ठ, धीर, वीर, सुचिर रुचिर भारतम्,
मातर, पितर, भ्रातर, त्रातर, निखिल उज्ज्वल भारतम्।
वंदे भारतम्।

* * *

(२)

जयति, जय भारत-भूमि भली ।
निर्भय,सहृदय,सदय निरामय,अक्षय,विजय-थली ,
शान्ति-निलय सब समय पुण्यमय गौरव-गेह-गली ।
देखि परत जहँ सुरविमान-सी भवनन की अवली ,
छेम, छमा छमता पर रीझी रमा रहत मचली ।
समर अमरगन के अजेय जहँ राजत वीर बली ,
जहाँ बजाई मोहन प्यारे कर्मयोग-मुरली ।

* * *

(३)

जय-जय जन्मभूमि जननी ।
ज्योतिर्मयी जगत की शोभा, देश-विदेश-मनुज-मन लोभा ,
गुण-गरिमा-महिमा-मणि-मंडित, अर्थ-कामयुत, धर्म-धनी ।
व्यास, कणाद, कपिल-से ज्ञाता, राम-कृष्ण-से त्रिभुवन-त्राता ,
गाँधी, तिलक, गोखले, ताता, मालवीय-से पुत्र जनी ।
तुझमें कमला का निवास है, वाणी का भी वर विलास है ,
सुख-सुखमा-सौभाग्य-समुन्नति-संयुत, सुंदर सदा बनी ।

* * *

(४)

प्रिय भारत के हम गुण गाए जायँगे
गोद में जिसके देह पली है, आँखों पै उसको बिठाए जायँगे ।

हर घड़ी ध्यान हमे उसकी भलाई का हो
भाव मन में नहीं कोई भी बुराई का हो।
हममे आदर्श सदाचार, सचाई का हो,
देश-परदेश में कुछ काम बड़ाई का हो।
आप हम हानि सहें, लाभ जो भाई का हो।
हम भारत का महिमा दिखाए जायँगे। प्रिय०।

* * *

(५)

जल्द ही यार, बुरे दिन ये निकल जाएँगे;
जो गिरे हैं, तो उठेंगे भी, सँभल जाएँगे।
खूब उत्साह से कर्तव्य का पालन कर लो,
भाल के अंक भी कर्मों से बदल जाएँगे।
हर घड़ी मन में रहे सत्य का आग्रह सखा;
तेज से उसके तो पत्थर भी पिघल जाएँगे।
देश-सेवा की यही राह है, चलिए चुपचाप;
क्या है पर्वाह उधर वैर जो जल जाएँगे।
जो कि अधिकार मनुष्यों के है, पूरे लेंगे;
हैं न बच्चे जो खिलौनों में बहल जाएँगे।
सिद्धि जब तक नहीं, तब तक नहीं रुकनेवाले;
हानि क्या, मूढ़ जो अधबिच में मचल जाएँगे।

दीन, दुर्बल हैं, सबल खूब दबा लें हमको ;
दिल दिलेरों के भी दंगल में दहल जाएँगे ।

* * *

(६)

नाथ, कहाँ तुमने मिलब लगाया ?
कोई त्राता नहीं, कोई नाता नहीं,
दुख जाता नहीं है दिखाया ।
जिन्हें सब सिर झुकाते थे, वही अब सिर झुकाते हैं ;
जिन्हें सब आर्य कहते थे, वहीं काले कहाते हैं ।
सहें सब, चुप रहें, किससे कहें जो कष्ट पाते हैं ;
महाराजों के लड़के दास बनकर दिन बिताते हैं ।
भक्तों पर प्यार प्रभो, देखे संसार प्रभो,
अनुनय अनुसार प्रभो, करिए उद्धार प्रभो,
दीन के बन्धु तुम्हें लोग कहा करते हैं ;
भक्त निश्चिन्त इसी हेतु रहा करते हैं ।
अपनों को भला क्यों भुलाया ?

* * *

(७)

देश-भक्ति-हीन मनुज पशु-सम है भाई !
सींग-पूँछ से विहीन, इन्द्रिय-सुख के अधीन,
बंधन में पड़ा दीन, लज्जा नाहिं आई ।

जनमे जिस देश बीच, (जाकर परदेश बीच)
भूले फिर उसे नीच, लज्जा नहिं आई।
जिनमें है स्वाभिमान, उनको है यही ध्यान,
करते रहें सावधान देश की भलाई।
जायँ चहे तुच्छ प्राण, खड-खड करें त्राण,
करिए निज-देश-त्राण, धुन यही समाई।

* * *

(८)

यह प्यारा देश हमारा, सारी दुनिया से न्यारा।
है प्रकृति विचित्र यहाँ की,
गिरि-नदी-वनो में बाँकी,
मन हरे हरेक नजारा।
छ ऋतुएँ रुचिर यहाँ हैं,
ऐसे फल, फूल कहाँ हैं,
गंगा, यमुना की धारा।
कुंती, विदुला-सी माता,
लक्ष्मण, अर्जुन-से भ्राता,
भाई पर सब कुछ वारा।
सावित्री, सीता आर्या
ऐसी हैं कहाँ सुभार्या,
जिनसे यम भी हो हारा।

श्रीराम, भीष्म प्रण-पालक,
किसके हैं ऐसे बालक,
जिनको जाने जग सारा।
श्रीकृष्ण, जनक-सा योगी,
भोगी होकर उद्योगी,
नेता है कहाँ निहारा।
जब धर्म-हानि नर करते,
जगदीश यहीं अवतरते,
शास्त्रों ने यही पुकारा।
यह शस्य-श्यामला माता,
सुजला, सुफला, सुखदाता,
सुरपुर भी हमें न प्यारा।
जप, तप, व्रत, पूजा भारी,
इसकी सेना है सारी,
यह जीवन, यही सहारा।
हिंदू मुस्लिम, ईसाई,
सब भारतीय हैं भाई,
हिल-मिलकर करें गुजारा।
हम इस पर मरनेवाले,
इसके दुख हरनेवाले,
इस पर तन मन धन वारा।

गुण-गरिमा-महिमायुत हैं,
धार्मिक आर्यों के सुत हैं,
अन्याय कभी न विचारा।
अपमान न होने देंगे,
हम स्वराज्य लेंगे-लेंगे,
यह सारा देश हमारा।
जय जन्मभूमि, जय माता,
हो जन्म-जन्म यह नाता,
यह गौरव-गर्व हमारा।

* * *

(६)

जय, जय, जय जन्मभूमि, नमो-नमो पुण्यभूमि,
स्वर्णभूमि कर्मभूमि, महिमामयि माता। जय०।
हिमगिरि का मुकुट श्वेत, आँचल-से श्याम खेत,
सागर शोभा समेत मेखला पिन्हाता।
गंगा, यमुना अपार, जीवन-प्रद स्तन्य-धार,
खानों का रत्न-हार वैभव बतलाता। जय०।
गोघृत है अमृत यहीं, षट ऋतु हैं प्रकृत यहीं,
संस्कृत है सुकृत यहीं, गौरव गुण पाता।
वसुंधरा धरा यहीं, रत्नाकर भरा यहीं,
ईश्वर अवतरा यहीं, दोनों का त्राता। जय०।

गुण से गौरव पानेवाले, हम हैं आर्य उदार । आर्यो० ।
हम स्वदेश के, देश हमारा, उस पर हमने जीवन वारा,
ईश्वर का है हमें सहारा रूठ रहे संसार । आर्यो० ।
घिरें विपद के बादल काले, चलें जुल्म के भीषण भाले,
पड़े कठिन कष्टों के पाले, रहे देश का प्यार । आर्यो० ।
ज्ञान-ग्रंथ का पाठ पढ़ा है, देश-प्रेम का रंग चढ़ा है,
भ्रातृभक्ति का भाव बढ़ा है, खुला सफलता-द्वार । आर्यो० ।
देश-दुर्दशा-दुख हरने को, भुजा फड़कती कुछ करने को,
हृदय मचलता है मरने को हम सब हैं तैयार । आर्यो० ।
हिंदू, मुस्लिम या ईसाई, भारतीय हम सब हैं भाई,
सबके मन में यही समाई, करें स्वदेश-सुधार । आर्यो० ।
माता के दुख दूर करेंगे, चिंता चित की चूर करेंगे,
मरना भी मंजूर करेंगे, जो हो देश-सुधार । आर्यो० ।
जय भारत की, जय स्वदेश की, पर्वा हमको नहीं क्लेश की,
ममता भाषा-भाव-भेष की, भूलें कभी न यार । आर्यो० ।
एका, तत्परता भवल है, उन्नति का उत्साह प्रबल है,
हम सबका भविष्य उज्ज्वल है, होगा बेड़ा पार । आर्यो० ।

भारत-संतान

मैं भारत-संतान, सत्य का भक्त हूँ ;
न्यायनिष्ठ, कर्मिष्ठ, वीर, धर्मिष्ठ भी ।

स्वावलंब की राह चलूँ उत्साह में।
स्वाभिमान की तान, और जातीयता,
राष्ट्र-प्रेम के गीत, मुझे अच्छे लगें।
क्षुद्र स्वार्थ से घृणा, कपट पर कोप है।
करता हूँ कर्तव्य किसी का भय नहीं;
लाखों बाधा-विघ्न, अगर आगे अडें,
तो भी पीछे पैर, न पडने का कभी।
आत्मिक बल भरपूर, हृदय में है; बडे
कडे कष्ट भी मुझे डिगा सकते नहीं।
वैर, विरोध, विकार, और बेकार का
व्यसन, नचना, इन बुराइयों की कभी
परछाहीं भी पड न मानस-मुकुर में।
मेरा गुरु आत्मिक विवेक ही एक है।
सहपाठी सब भव, प्रकृति-पुस्तक पढूँ।
जीवन ही है प्रश्न-पत्र, कर्तव्य की—
कठिन परीक्षा परमपिता खुद ले रहे।

देश-सेवा

(एक देश-भक्त की उक्ति)

(१)

क्यों पूज्य हैं शिवाजी? क्यों मेजिनी बडा है?
क्यों गोखले, तिलक का झंडा यहाँ गड़ा है?

गाँधी महापुरुष भी किसके लिये अड़ा है ?
लंदन में वृद्ध दादा' किसके लिये लड़ा है ?
वह ज्ञान-वाटिका की स्वर्गीय मिष्ट मेवा,
है मित्र देश-भक्तो, निष्काम देश-सेवा।

(२)

मैं जेल मे पड़ा हूं, हाथों में हथकड़ी हो,
सादी सजा हो, अथवा वह खूब ही कड़ी हो।
कोड़ों की मार मुझ पर चाहे बहुत पड़ी हो,
मेरी प्रवृत्ति लेकिन इस बात पर अड़ी हो—
मैं देश-भक्त नर हूँ मेरा यही है शेवा,
उड़ जाय बोटियाँ भी छोड़ूं न देश-सेवा।

(३)

जाऊँगा जल मे जो, होगा न भ्रष्ट कुछ भी,
अस्पष्ट शक्तियां हैं, होगा न स्पष्ट कुछ भी।
सर्वस्व त्यागने मे होगा न नष्ट कुछ भी,
चक्की के पीसने में होगा न कष्ट कुछ भी।
हो पुत्र-हीन जननी छोडू जवान बेवा
छोड़ू मगर न फिर भी निष्काम देश-सेवा।

(४)

डंडों की मार मुझको उपहार हार-सा हो
बौछार गोलियों की फूलों की मार-सी हो।

दुष्टों को भर नारकी सत्कार, प्यार-सी हो।
मा की पुकार सुनकर मुन यह सवार-सी हो—
भव-सिंधु, देह-नाका हो जाय पार खेवा।
करता रहूँगा दृढ़ हो दिन रात देश-सेवा।

(५)

दिन-रात वार करना हम पर कठिन दमन के,
चुन-चुनके फूल तोड़ो उजड़े हुए चमन के।
पर होंगे हम न कायल इस आपके अमन के
मिटने के हैं न अब तो ये भाव मुक्त मन के—
या तो स्वतन्त्र होंगे, या काल का कलेवा।
मरकर अमर बनेंगे करते स्वदेश-सेवा।

(६)

छूटी शराबख्वारी, जो कर रही थी ख्वारी।
दौलत बची, अदालत की लत छुटी हमारी।
सब मूठ-मूट छूटा, खादी हुई है प्यारी।
भारी मिलें विदेशी बेकार हैं बिचारी।
की खूब केश-सेवा जिप तुल्य वेश-सेवा,
अब तो किया यही प्रण भूले न देश-सेवा।

स्वाधीनता

(१)

थे प्रणवीर प्रताप जन्म भर जिसके हामी ,
नामी श्रीशिवराज वीर थे जिसके स्वामी ,
जिसके विना समृद्ध स्वर्ग का राज्य हेय है ,
जो भारत का प्रेय-श्रेय है ज्ञेय ध्येय है ,
लोकमान्य ने जन्म-भर जिसकी की आराधना ,
कष्ट उठाकर कर रहे गाँधी जिसकी साधना ,

(२)

जो जीवट की ज्योति जगा देती जीवन मे ,
खोलें जो उत्साह-उत्स मानव के मन मे
होते उच्च विचार जगत् मे जिसके द्वारा ,
मनस्वियों ने प्राण-सहित जिस पर सब वारा ,
जो होने से हृदय की हर लेता है हीनता ,
स्वयंसिद्ध ससार का स्वत्व वही स्वाधीनता ।

(३)

जो मुर्दे का मर्द बना देती पल-भर में ,
जिसके विना न मान मिले बाहर या घर में
रूस, रूम, जर्मनी और अमरीकावाले
जिसके है अनुरक्त भक्त, गोरे या काले ,

दूर करे जो भक्त की पराधीनता-दीनता,
वह देवी है स्वर्ग की अटल शक्ति स्वाधीनता।

(४)

बर्बर नर भी जिसे जान से बढ़कर जानें,
पशु-पक्षी भी जिसे स्वत्व अपना पहचानें
वह अमूल्य है रत्न, यत्न से उसको रखना
देखो सर्कस और बात यह खरी परखना—
होता शेर शृगाल-सा जो न हुई स्वाधीनता
जाना मरन से बुरा अगर गई स्वाधीनता।

(५)

पर न अपव्यवहार कभी तुम उसका करना
न्यायनिष्ठ हो नियम-धर्म से हरदम डरना।
उच्छृंखलता तो शाहों के भी लिये बुरा है।
देखो कैसर ज़ार गले पर फिरी छुरी है।
बस ईश्वर ही को डरो ग्रहण करो न अधीनता:
दीनों की रक्षा करो यही सत्य स्वाधीनता।

जीवन-संग्राम

(१)

सृष्टि के जितने जीव, समस्त, करें अपने प्रतिपक्षी पस्त,
सदा आगे बढ़ने को व्यस्त, विजय की धुन में रहते मस्त,

उसी का ध्यान सवेरे-शाम,
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(२)

महासागर में जीव अपार, ढूंढ लेते अपना आहार,
बड़े छोटों को खाते मार, निबल का प्रबल करें संहार,
जगत् का यों ही चलना काम।
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(३)

बने मानव दानव-अनुरूप, पक्षियों-पशुओं से, तद्रूप
पेट का पाटें अगम कूप। चूसते रक्त प्रजा का भूप।
निबल का दुनिया में क्या काम?
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(४)

शक्तिशाली को खुशहाली, अशक्तों की हो पामाली,
देख मोटे तरु को माली, सींचता, करता रखवाली,
सुखेले फेंके, यद्यपि आम।
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(५)

देख तेजस्वी, पाकर त्रास, फटकता राहु न रवि के पास,
मगर शशि उसके मुख का ग्रास, बने, जब-तब सहना उपहास।

नहीं है शक्ति बिना आराम ;
हो रहा है जीवन-संग्राम ।

(६)

आजकल योरप वा भूखंड, एशिया, अमरीका उद्दंड ,
जातियों की स्पर्द्धा, पाखंड, देख पड़ता है वहाँ अखंड ,
चतुर चालों से लेते काम ,
हो रहा है जीवन-संग्राम ।

(७)

चीन अटाचित पीनक में, पड़ा पीछे झूठी झक में ,
चुटीलों ने देकर चकमे, लूट ली दौलत नाहक में ,
घोटकर गला किया बदनाम ।
हो रहा है जीवन संग्राम ।

(८)

इधर है भारत भी बेहाल, अन्न का है हरसाल अकाल,
रही खाली खिंचने को खाल। दोष किसका, अपने आमाल ,
हुआ सरनाम कुली कि गुलाम ;
हो रहा है जीवन संग्राम ।

(९)

कठिन कर्तव्यों का मैदान, छोड़ भागा जब हिंदुस्थान ,
तभी दुशमन ने बन शैतान, किया भारत मा का अपमान ,

हुआ जनता का काले आम।
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(१०)

घाव उस अवसर के नासूर, कहीं होते, तो आज जरूर,
न होते ऐसे कायर, क्रूर, न यों मुहताज, न यों मजबूर,
न मिटता यों पुरखों का नाम;
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(११)

खून उन घावों का आजाद दिलाता आजादी की याद,
देखकर होता घर बर्बाद, बढ़ाते घर ही में न विवाद,
हृदय से हिल-मिल करते काम;
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(१२)

खेल कब घर में लड़ने में गैर के पैर पकड़ने में,
गुलामो, व्यर्थ अकड़ने में, शृंखला और जकड़ने में
रहोगे सदियों तक नाकाम;
हो रहा है जीवन-संग्राम।

(१३)

सँभल जाओ, सोचो अब तो, खो चुके हो अपना सब तो,
छोड़ दो ढोंग-ढंग-ढब तो कहो कुछ अपना मतलब तो,

नहीं तुमको करना कम काम ;
हो रहा है जीवन-संग्राम ।

(१४)

जन्म यह मानव का पाया तुम्हें माया ने भरमाया ,
न अपना आपा अपनाया समझ ली सरवस वस, काया ,
अरे दुखियों के आओ काम
हो रहा है जीवन-संग्राम ।

(१५)

समझते हो जो हम हैं शूर अगर आत्मिक बल है भरपूर,
मार लो दुश्मन मन मगरूर विकट संकट सब होंगे चूर ,
अमर कर जाओ मरकर नाम ;
हो रहा है जीवन-संग्राम ।

वीर-वाणी

बढ़ो नर वीर धन्य हो लो
देश की जी से जय बोलो ।
उठो, उत्साह उमड़ आवे,
अटल साहस बल को लावे,
शांति की सेना सज जावे,
देश फौरन् स्वराज्य पावे,
दशा देखो आँखें खोलो
देश की जी से जय बोलो ।

स्वदेशी का आवाहन हो,
विदेशी-वस्त्र-विसर्जन हो,
शीघ्र ऐसा आयोजन हो,
स्वदेशी तन मन जीवन हो
तभी तुम जो चाहो, सो लो ,
देश की जी से जय बोलो।
समय है, प्रण पर दे दो प्राण
शांति से सह लो वाणी-बाण,
महात्माजी को मान प्रमाण,
करो तुम भरसक आर्त-त्राण,
हृदय से सेना-व्रत को लो।
देश की जी से जय बोलो।
द्वेष का लेश न मन में हो
दंभ का वेष न तन में हो,
न्याय-निष्ठा जीवन मे हो,
प्रतिष्ठा देसीपन मे हो
नियम से संयम को तोलो।
देश की जी से जय बोलो।
हथकड़ी-बेड़ी है गहने,
देश के शत्रु इन्हें पहने,
जेल है तीर्थ, वहाँ रहने

अगर पावें तो क्या कहने !
देश के बन्धन यों खोलो,
देश की जै से जय बोलो।

प्रार्थना

(१)

श्रीपति, हम हैं पतित, पतितपावन तुम सच्चे
क्षमाशील तुम पिता, नासमझ हम हैं बच्चे।
हम भूले हैं तुम्हें, दोष यह अपना माना :
पर क्या तुमको उचित, प्रभो, यों हमें भुलाना ?
मिट्टी में खेला करें, बालक मनोविनोद में
किंतु उसे माता-पिता, क्या न उठाते गोद में ?

(२)

भक्ति, शक्ति से हीन, दीन दोषों से युत हैं
कैसे ही हों, पिता आप ही के तो सुत हैं।
मंगलमय कर-कमल कुमति को हरनेवाला,
सिर पर रख दो, मिटे मोह जिसने धर घाला।
देखें अपने रूप को दिव्य के आलोक में
पहले का वह अभ्युदय पावें फिर इस लोक में।

(३)

मगलमय, आनद-कद, जय धर्म-धुरधर।
ज्योतिर्मय, जगदीश, जयति जडता-हर, शकर।
अतर्यामी, दीन-बधु, स्वामी, गुरु, प्यारे
भ्राता, माता, पिता, बधु सब तुम्हीं हमारे।
आर्यादर्श-प्रकाश से मिटे मोह-मत्सर सभी।
कृपा-कोर इस ओर हो, भारत-भर सँभले अभी।

(४)

स्वावलब का पाठ पढ़ें सारे नर नारी।
स्वाभिमान के साथ सदाचारी हों भारी।
राष्ट्रभक्ति हो मूलमत्र उन्नति का व्रत हो।
दया-धर्म के साथ सत्य पर लक्ष्य सतत हो।
फिर उन्नत आदर्श हो, फिर क्षमा ही हर्ष हो।
जगतीतल में धन्य फिर प्यारा भारतवर्ष हो।

(५)

हरिश्चद्र-से सत्य पालनेवाले फिर हों
रामचद्र से प्रण निबाहनेवाले फिर हों।
कृष्णचद्र-से कर्मयोग के सच्चे फिर हों।
ध्रुव, लव-से, प्रहलाद पार्थ-से, बच्चे फिर हों।
फिर देख सारा जगत्, गुरुओं का गारव यहीं।
फिर से हो ससार मे स्वर्ग-सदृश भारत-मही।

कारागार

यह समय का फेर है संसार में,
जो पड़े ये कष्ट कारागार में,
चोर, खूनी, जालिमों ही के लिये ;
आज वे हैं देश-प्रेमी के लिये।
आज मोहन का जहाँ पर वास है
शेर-नर पंजाब का जो खास है—
लाजपत वह कर रहा जय-जप जहाँ,
ये महात्मा कर रहे हैं तप जहाँ,
जिस जगह जाकर जवाहिरलाल ने ;
निद्र होकर वृद्ध मोतीलाल ने,
सान पर चढ़कर बढ़ाई शान है ;
आबरू रक्खी, न छोड़ी आन है।
भक्त गाँधी के हुए उपदेश के
दामना मे दास छूटे ; देश के
दुःख दारुण दूर करने के लिये
क्लेश कारागार के सब सह लिए।
जो विधाता विज्ञ भारत-भाग्य के,
राष्ट्र-मस्तक के तिलक सौभाग्य के
जब कि कारागार में वे सब रहे,

कष्ट कैदी के उन्होंने भी सहे,
तब घृणा के योग्य क्या वह स्थान है?
उस जगह जाना बड़ा सम्मान है।
वह हमें तो तीर्थ काशी से बड़ा
मुक्ति बंधन ही वहाँ का है कड़ा।
राष्ट्र के सच्चे सिपाही जेल में,
मुक्ति-मंदिर-मार्ग शाही जेल में,
सत्य का संग्राम साग्रह कर रहे;
हैं न विचलित, वार सीने पर सहे।
वे तपोवन जानते है जेल को।
खेलते हैं जानकर इस खेल को।
शांतिमय उत्साह उच्च दिखा रहे,
तीर्थ-यात्रा के लिये ज्यों जा रहे।
धुन उन्हे है देश के उद्धार की;
है तपस्या इष्ट कारागार की।
गर्व से वे हथकड़ी, बेड़ी बजा,
भोगते गाते हुए, सारा सजा।
कंस का विध्वंस करने के लिये,
भूमि का भय, भार हरने के लिये,
कृष्ण ने जिसमे लिया अवतार है,
वह धरा में धन्य कारागार है।

हो यही इच्छा कि हम हों जेल मे;
हथकड़ी-बेड़ी, दलेल-कुलेल मे।
देश-सेवा में हमारा ध्यान हो;
एक वदेमातरम् का गान हो।
हैं नहीं वे कुछ अमर जो डर रहे;
गेह में गाफिल गुलामी कर रहे।
देश-सेवा की नई यह युक्ति है;
जेल-जीवन आज जीवन्मुक्ति है।

---

४. कथानक

वन-विहंगम

(१)

वन-बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत, कपोती कहीं।
दिन रात न छोड़ता एक का दूसरा, ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं।
बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई-नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं।

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा अनुराग के राग में मस्त हुआ।
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ।
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ।
इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ।

(३)

सुविशाल वनों में उड़े फिरतें, अवलोकते प्राकृत-चित्र-छटा
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा।
कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा।
कहीं कुञ्ज, लता के वितान तने, घने फूलों का सौरभ था सिमटा।

(४)

'झरने' झरने की कहाँ झनकार, फुहार का हार विचित्र ही था।
हरियाली निराली, न माली लगा, तब भी सब ढंग पवित्र ही था।

ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहा पर सिंह भी मित्र ही था ;
बस, जान लो, सात्त्विक सुदरता-सुख सयुत शाति का चित्र ही था।

(५)

कहीं भील-किनारे बड़े बड़े ग्राम गृहस्थ-निवास बने हुए थ
खपरेलो म कद्दू कंलो की बेल क खूब तनाव तने हुए थे।
जल शीतल अन्न जहाँ पर पाकर पक्षी घरो म घन हुए थ ;
सब श्रार स्वदेश-स्वजाति-समाज-भलाइ के ठान ठने हुए थे।

(६)

इस भाति विलोकते लोक की लीला प्रसन्न वे पक्षी फिरे घर को ;
उन्हे देखके दूर ही से मुख खोलके बच्चे चले चट बाहर को।
दुलराने, खिलाने, पिलाने से था अवकाश उन्हें न घड़ी-भर को
कुछ ध्यान ही था न कबूतर को, कहीं काल चढा रहा है शर को।

(७)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था, छवि छाई वसत की कानन म
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी जड़-चेतन के तन में, मन में।
निकले थे कपोत, कपोती कहीं, पड़े भुड मे घूम रहे वन मे ;
पहुचा यहा घोसले-पास शिकारी शिकार की ताक में निर्जन म।

(८)

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास बिछा दिया जाल को कौशल से
जहाँ देखके अन्न के दाने पड़े, चले बच्चे, अभिज्ञ न थे छल से।

नहीं जानते थे कि यहीं पर है कहीं दुष्ट भिडा पडा भूतल मे ।
बस, फासके बाँस के बधन में कर देगा हलाल हम बल से ।

(९)

जब बच्चे फँसे उस जाल मे जा, तब वे घबरा उठे बधन में
इतने मे कबूतरी आई जहाँ, दशा देखके व्याकुल हो मन में ,
कहने लगी—हाय, हुआ यह क्या ? सुत मेरे हलाल हुए बन में ।
अब जाल मे जाके मिलूँ इनमें, सुख ही क्या रहा इस जीवन में !

(१०)

उस जाल मे जाके बहेलिए के ममता से कबूतरी आप गिरी
इतने में कपोत भी आया वहाँ उस घोसले मे थी विपत्ति निरी ।
लखते ही अँधेरा-सा आगे हुआ, घटना की घटा वह घोर घिरी ।
नयनो मे अचानक बूँद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी ।

(११)

तब दीन कपोत बडे दुख से कहने लगा— "हा ! अति कष्ट हुआ ।
निबलों ही को दैव भी मारता है, य' प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ ।
सब सूना किया, चली छोड प्रिया, सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ ।
इस भाँति अभागा अतृप्त ही मैं सुख भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ।

(१२)

कल कूजन, केलि-कलोल मे मस्त हो बच्चे मुझे जो सुखी करते,
जब देखते दूर से आता मुझे किलकारियाँ मोद से जो भरते,
समहाय वे धायके आयके पास उठायके पख नहीं टरते,
वही हाय हुए असहाय अहो ! इस नीच के हाथ मे हैं मरते !

(१३)

गृहलक्ष्मी नहीं, जो जगाए रहा करती थी सदा सुख-कल्पना को ;
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हीं के लिये सहता इस दारुण वेदना को।
वह सामने ही परिवार पड़ा-पड़ा भोग रहा यम-यातना को ;
अब मैं ही वृथा इस जीवन को रख कैसे सहूँगा विडम्बना को ?"

(१४)

यहाँ सोचता था यों कपोत, वहाँ चिड़ीमार ने मार निशाना लिया ;
गिर लोट गया धरती पर पंछी, बहेलिए ने मनमाना किया।
पल में कुल का-कुल काल कराल ने यों यमलोक को भेज दिया ;
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह देखो निदर्शन है बढ़िया।

(१५)

हरएक मनुष्य फँसा जो ममत्व में तत्त्व-महत्त्व को भूलता है,
उसके सिर पे खुला खड्ग सदा कच्चे धागे में धार से झूलता है।
वह जाने बिना विधि की गति को अपनी ही गढ़त में फूलता है,
पर अन्त को ऐसे अचानक अंतक अस्त्र अवश्य ही हूलता है।

(१६)

पर जो जन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता ;
परिवार से प्यार भी पूरा रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता ;
निज-भाव न भूल, स्व-भाषा न भूल, न विघ्न-व्यथा को कभी डरता ;
कृतकृत्य हुआ हँसते-हँसते वह सोच-संकोच बिना मरता '

(१७)

प्रिय पाठक, आप तो विज्ञ ही हैं, फिर आपको क्या उपदेश करें ?
शिर पै शर ताने बहेलिया काल खड़ा हुआ है, यह ध्यान धरें।
दशा अंत को होनी कपोत की-जैसी, परंतु न आप जरा भी डरें।
निज-धर्म के कर्म सदैव करे, कुछ चिह्न यहाँ पर छोड़ मरें।

लक्खी बाई

[क]

(१)

काशी में थी एक अनोखी लक्खी बाई।
रंभा से भी रुचिर रूपवाली, मनभाई।
दूर-दूर तक थी प्रसिद्ध उसकी सुघराई।
चित्र देखकर हुए हज़ारों थे सौदाई।
कथिकों ने की शायरी भाव बताने के लिये।
कइयों ने तोड़े कलम कवि कहलाने के लिये।

(२)

मिला बाहरी रूप-रंग था उसको जैसा,
था स्वभाव भी सहृदयता से सुंदर वैसा।
काम-शास्त्र का ग्रंथ चाहिए उसको कहना।
थे सब सिद्ध प्रयोग, सदा लड़ता था लहना।

नाच और गाना अगर उसका होता था कहीं,
तिल रखने को भी जगह तो फिर मिलती थी नहीं।

(३)

धनी, सेठ, जौहरी, महाराजा, रजवाड़े,
जिनके देखे दूत अनेकों तिरछे-आड़े,
आते-जाते और बुलाते थे आदर से;
बरसाते थे रत्न और धन लाकर घर से।
एक लाख रुपए उसे जो कोई देता कभी;
एक रात उसके निकट रहती थी लक्खी तभी।

(४)

किंतु उधर जो दीन दुखी दुख रोता आकर,
जाता था वह हो निहाल मनमाना पाकर।
विश्वनाथ को अगर कभी घर से जाती थी,
या गंगा पर पर्व-दिवस में वह आती थी,
तो लक्खी पर दृष्टियाँ पड़ती थीं इस ढंग से—
ज्यों भौंरों की पंक्तियाँ मिलें कमल के अंग से।

[ख]

(५)

कोढ़ी, लूले एक विप्र थे उसी पुरी में;
होता था रोमांच देखकर दशा बुरी में।
पीप अंग से वस्त्र फोड़ बाहर छनता था;
"त्राहि-त्राहि भगवान!" यही कहते बनता था।

प्रायश्चित्त उसे समझ अपने पहले कर्म का,
सहते ये चुपचाप वह कष्ट हृदय के मर्म का।

(६)

पापी ये, पर पुण्य न-जाने कौन किया था ;
जिससे पत्नी पतिव्रता ने साथ दिया था।
चन्द्र साथ चाँदनी, और काया सँग छाया,
वह थी पति-सहचरी जगत् के जैसे माया।
सेवा करती हरघड़ी अपने पति की भक्ति से ;
होने देती थी नहीं कष्ट उन्हे निज शक्ति से।

(७)

करती थी सब काम सबेरे उठकर अपने,
पति के पैरो-पास लगे फिर हरि को जपने।
पति की आँखें खुली देखकर लाती पानी ;
करती उसे प्रसन्न बोलकर मीठी बानी।
शौच कराकर प्रेम से धोया करती अंग थी ;
अपने हाथो से उन्हें घोट पिलाती भग थी।

(८)

भोजन कर तैयार खिलाती अपने कर से
और सुलाती पलँग बिछाकर अति आदर से।
फिर करके सत्कार अतिथि का भोजन करती ;
तन, मन, धन से आठ पहर पति का दम भरती।

एक अलौकिक तेज का परिचय मुख में मिल रहा ;
दया, शांति, संतोष था आँखों-भीतर खिल रहा ।

(९)

स्वामी का मुख मलिन देखकर इतने पर भी ,
पतिव्रता ने चैन न पाई फिर दम-भर भी ।
बोली दोनों हाथ जोड़कर—"बोलो प्यारे ,
चिंतित-सा है चित्त कौन-से दुख के मारे ?
वारूँ तुम पर, नाथ, मैं हँसते-हँसते प्राण भी ;
पूर्ण करूँगी कामना, आप कहें, तो मैं अभी ।"

(१०)

कई बार यों कहा, कबूला मगर न स्वामी ;
टाल दिया "कुछ नहीं प्रिये !" कह, भरी न हामी ।
पीछे जब पड़ गई, लगी रोने वह बाला ,
हाथों से मुँह ढाँप विप्र ने तब कह डाला—
"मैं पामर हूँ पातकी, किस मुँह से, प्यारी, कहूँ ?
लक्खी पर आसक्त हूँ, इसीलिये चिंतित रहूँ ।

(११)

मुझको है यह विदित, रूप, धन उसको प्यारा ;
मैं हूँ कोढ़ी, घृणित, बना वैतरणी-धारा ।
कपड़ा देते लोग नाक में देख मुझे सब ;
लक्खी बाई फिर दरिद्र को मिलने की कब ?

किंतु नीच मन यह तदपि होता नहीं निरस्त है;
लोक-हँसाई तुच्छ कर अपनी धुन में मस्त है।"

(१२)

पति की सुनकर बात, सती ने सोचा दिल में;
डालूँगी मैं, नाथ, हाथ नागिन के बिल में।
इच्छा पूरी करूँ, जिस तरह हो वह पूरी;
हूँ पतिव्रता, तो न रहेगी बात अधूरी।
यों विचार कर ब्राह्मणी बोली उस दम कुछ नहीं;
पति को सोते देखकर चल दी फिर घर से कहीं।

[ग]

(१३)

लक्ष्मी सध्या-समय द्वार पर आ जाती थी;
होता था जो दुखी, उसे घर में लाती थी।
जो वह माँगे, वही उसे देकर आदर से,
करती थी वह बिदा नित्य ही अपने घर से।
देखा उसने एक दिन देवी-सी कोई खड़ी;
किसी प्रतीक्षा में अड़ी, चिंतित-सी कुछ हो पड़ी।

(१४)

आँखें मिलते हाथ जोड़कर लक्ष्मी बोली—
"किसकी तुम्हें तलाश? किधर को इच्छा डोली?
जो चाहो, सो देवि, यहाँ पर मिल सकता है;
नव आशामय मुकुल-मनोरथ खिल सकता है।

खड़े न होने योग्य है किंतु राह यह पाप की,
लक्खी बाई अति अधम दासी हूँ मैं आपकी।"

(१५)

युक्ति-पूर्ण यह उक्ति श्रवण कर ब्राह्मण-बाला,
बोली—"मैंने यहाँ ढग सब देखा-भाला।
पुण्य-कार्य को पाप-पथ पर हो जो जाना,
तो उसमें कुछ दोष नहीं ऋषियों ने माना।
गुण¹-धर जीवन² नीच³ से पावें ऐसी चाह⁴ में,
यही सोचकर आज मैं आई हूँ इस राह में।"

(१६)

सुन सादर ले गई उसे घर लक्खी बाई,
पतिव्रता ने बात खुलासा सभी सुनाई।
चुप रहकर कुछ देर सोचकर बाई बोली—
"देखो देवी, आठ रोज़ में होगी होली।
उस दिन ब्राह्मण देव को न्योता दूँगी भौन में,
दासी होकर करूँगी, जौन कहेंगे, तौन मैं।"

[घ]

(१७)

ब्राह्मण को जब मिला निमत्रण बाईजी का,
विस्मित तकता रहा देर तक मुख पत्नी का।

---

१ गुण और डोरी। २ जीवन और जल। ३ नीच जन और कुआँ।
४ फ़ारसी चाहें कूप को भी कहत हैं।

दुरी दुराशा हृदय बीच जो देती था दुख,
वह आशा बन लगी कल्पना का देने सुख।
ज्यों-त्यों काटे आठ दिन, होली का दिन आ गया;
गली-गली के गोल मे होली का रँग छा गया।

(१८)

उबटन सौरभ सना बनाकर घना लगाया।
फिर नहलाकर बाँध पट्टियाँ, साफ बनाया।
वस्त्र इतर में बसे हाथ से फिर पहनाए;
करके यों सिंगार सती ने सब सुख पाए।
लक्खी की थी पालकी आई लेने द्वार पर;
भेज दिया पतिदेव को उस पर स्वय सवार कर।

(१९)

अतिथि-आगमन-समाचार सुनकर उठ धाई;
अगरानी को आप द्वार पर लक्खी आई।
आदर से ले गई भवन के भीतर बाई;
पैर पखारे प्रथम, आरती फिर उतराई।
फल, गोरस, मिष्टान्न कुछ ब्राह्मण को अर्पण किया;
और रसीली दृष्टि से उनको सुखी बना दिया।

(२०)

आया फिर दो जगह भरा पानी पीने का,
एक स्वर्ण का कलश काम जिस पर मीने का;

मिट्टी का भी वहीं दूसरा और पात्र था ,
जो जल का सामान्य एक आधार-मात्र था ।
ब्राह्मण को यह देखकर मन में कौतूहल हुआ ,
पूछा—"यह क्यों ? किस लिये दो पात्रों में जल हुआ ?"

(२१)

तब लक्खी ने कहा—"बात है यह साधारण ,
जरा सोचिए, जान पड़ेगा इसका कारण ।
स्वर्ण-कलश में भरा बर्फ़ का ठंडा जल है ;
मिट्टी के में धरा हुआ यह गंगा-जल है ।
क्षणिक तृप्ति के बाद ही तृष्णा बढ़ती एक से ;
और मिटे संताप सब, ठंडक पड़ती एक से ।

(२२)

आडंबर है उधर, इधर गुण-गरिमा सोही ;
इनमें से जो रुचे, ग्रहण करिए उसको ही ।"
सुनकर सोचे विप्र, ग्रहण गंगा-जल करना ।
जो न सुलभ, मन उसी तरफ क्यों चंचल करना ?
बोले—"बाईजी, सुनो, मैं ब्राह्मण हूँ जाति का ;
गंगा-जल को छोड़कर पियूँ न जल इस भाँति का ।"

(२३)

तब होकर कुछ नम्र, दृष्टि अपनी स्थिर करके ,
बोली लक्खी—विप्र-ओर यों ही फिरकरके—

"योग्य आपके, देव, आपका यह विचार है ;
फिर गणिका की चाह हृदय मे किस प्रकार है ?
स्वर्ण-कलश का वर्फ-जल मेरे मिलन-समान है ,
इस सु-वर्ण की चमक में बडे-बडों का ध्यान है ।

(२४)

जैसे ठडी वर्फ ताप को क्षण-भर हरती ,
फिर न मिले, तो और प्यास को दूना करती ,
वैसे गणिका-प्रणय-साधना का सुख होता ;
बढती जी की जलन, शाति का सूखे सोता ।
गगा-जल है आपकी शीतल, विमल पतिव्रता ,
उसे छोड़ क्या उचित है करना ऐसी मूर्खता ?"

(२५)

सुन वेश्या के वचन विप्र जैसे जागे-से ,
मोह हो गया दूर, हटा परदा आगे से ।
सच तो है, यह कहाँ रूप-मृगतृष्णा ऐसी !
और कहाँ वह शाति-रूपिणी गगा-जैसी !
मुझसे तो गणिका भली, इतना जिसे विचार है ।
मेरी मति को, ज्ञान को, शिक्षा को धिक्कार है ।

* * *

(२६)

लक्खी ने ऐसे उपाय से काम निकाला ;
विप्र बचे, वह बची, प्रतिज्ञा को भी पाला ।

ब्राह्मण ने फिर अनुष्ठान गंगा पर ठाना ;
गायत्री से कुष्ठ मिटा, पाया मन-माना।
पतिव्रता भी अंत तक पति-पद-पूजा-रत रही ;
पाठकगण, तुम भी कहो—"धन्य, धन्य भारत-मही !"

राजा रंतिदेव

(१)

भूमि के रज-कण, सितारे भी सभी आकाश के ,
बूँदियाँ बरसात की कोई कभी गिन भी सके ;
किंतु भारत के सपूतों की यशोगाथा बड़ी ;
है अपरिमित, अंत-हीन, अनंत मणियों की लड़ी।

(२)

छिद्र-हीन, गुणी, अमूल्य अनेक रत्न हुए यहीं ,
भीष्म, कर्ण, दधीचि, शिबि हैं अन्य देशों में नहीं।
अब हुए हैं हीन हिंदू हर तरह प्रतिपत्ति में ,
पर नहीं हैं कम किसी से इस प्रथम-संपत्ति में।

(३)

आज भी सब उच्च भावों का यहीं आदर्श है ,
मानसिक उत्कर्ष का निष्कर्ष भारतवर्ष है।
मानसिक संस्कार सब अंतःकरण में हैं वहीं ,
किंतु उनकी शक्ति दिन-दिन क्षीण होती जा रही।

(४)

इसलिये हमको सँभलकर सोच लेना चाहिए,
पूर्वजों के सद्‌गुणों पर ध्यान देना चाहिए।
है वही आदर्श हिंदू-जाति के कल्याण का,
सामयिक सग्राम की मुठभेड़ में निज-त्राण का।

(५)

धैर्य-धारण ही हमारा इस समय कर्तव्य है,
कुछ नहीं चिंता, समागत नव्य युग भी भव्य है।
सत्य है, हैं भोजनों के इस समय लाले पड़े,
दीनता, दारिद्र्य, दुर्गति, दु:ख हैं आगे अड़े;

(६)

पर न डिगना धर्म-धृति से रतिदेव-समान हो,
है परीक्षा का समय, ऐसा करो, सम्मान हो।
यह पुरातन पाठ गाथा रतिदेव नरेश की,
याद कर लो एक बार वही कथा इस देश की।

(७)

रन्तिदेव उदार, दानी, दीन के मा-बाप थे,
लोक के आदर्श उनके पुण्य कार्य-कलाप थे।
एक दिन वह आ गया, रहना पड़ा भूखा उन्हें,
हा, नसीब नहीं हुआ कुछ अन्न भी रूखा उन्हें।

(८)

दान देने में खुला खाली खजाना हो गया,
दीन दुखियों के लिये बाकी रही केवल दया।
शत्रुओं ने पा सुअवसर आक्रमण उन पर किया,
छीनकर सब राज्य उनका आप कब्जा कर लिया।

(९)

भूप थे निरुपाय, उनके पास था धन ही नहीं,
सैन्य को कुछ काल से था मिला वेतन ही नहीं।
कुव्यवस्था से अवस्था आ गई वन-वास की,
किंतु कुछ भी कम हुई मात्रा नहीं उल्लास की।

(१०)

भूप को था ज्ञान, कुछ भी नित्य रहने का नहीं,
राज्य हो, या देह ही हो, छूटना है सब यहीं।
दीन का दुख मेटने में राज्य क्या है, प्राण भी
जो निकल जावें, न मुख से आह निकलेगी कभी।

(११)

पुत्र, पत्नी और राजा दूर कानन-प्रान्त में,
एक ईश्वर के सहारे वे पड़े एकांत में।
अन्न भोजन बिना अड़तालीस दिन बीते वहाँ,
किंतु अपने धर्म से विचलित हुए नरपति नहीं।

(१२)

क्षत्रियों का धर्म है, मर जायँ, माँगेंगे नहीं ;
लाख हो आपत्ति, अपना धर्म त्यागेंगे नहीं ।
कद-मूल-फलादि जो कुछ भूप लाते भी कभी ,
आ अचानक अन्य कोई माँग लेता सो सभी ।

(१३)

एक जन उन्चासवें दिन आ गया नृप के लिये
खीर भरकर थाल में लोटा भरा जल का लिए।
भूप ने चाहा उसे जब बाँटकर खाना, तभी
आ गया कोई अतिथि,कहता हुआ—"ठहरो अभी

(१४)

भूक का मारा, थका ब्राह्मण समझ, आहार से
दीजिए कुछ अन्न मुझको भी उदार विचार से ।"
रतिदेव नरेश ने आनद से तब यों कहा—
"आइए भूदेव, कैसा भाग्यशाली हूँ, अहा !"

(१५)

भूप ने श्रद्धासहित आधा उसे भोजन दिया ;
विप्र ने भी तृप्त हो प्रस्थान कानन से किया ।
तब नृपति ने अन्न जो अवशिष्ट था उस पात्र में ,
दे वही सबको, किया संतोष बस, जल-मात्र में ।

(१६)

किंतु वैसे ही वहाँ पर शूद्र आकर अड गया ;
आर्त वाणी शूद्र की सुन आ गई नृप को दया।
देख रानी ने सहर्ष स्वयं दिया उस अन्न को ,
है वही संपन्न, जो कि करे प्रसन्न निरन्न को।

(१७)

है सहज सिर काटकर देना समय पर पात्र को ,
पर कठिनतर है खिलाना यों बुभुक्षित-मात्र को !
देखकर वह शांतियुत मुख-कांति रानी की भली ,
भूप के आनंद द्वारा अश्रु-धारा बह चली।

(१८)

शूद्र होकर तृप्त, आशिष दे, वहाँ से चल दिया ,
तब कुँअर ने खीर का वह पात्र निज कर में लिया।
फिर अतिथि आया, लिए कुत्ते कई आहार को ;
दशा उसकी देख आई दया राजकुमार को।

(१९)

थी अवस्था अल्प ही, ऊँचा मगर आदर्श था ,
देख सकता फिर कुँअर कैसे बुभुक्षित की व्यथा ?
भूक के मारे मलिन मुख खिल उठा उल्लास से ;
राजसुत ने यों कहा, दे अन्न अपने पास से,—

(२०)

"ले अतिथि, जो कुछ उपस्थित इस समय आहार है;
तृप्त तू हो, मैं रहूँ भूका—मुझे स्वीकार है।"
"क्यों न हो, जिसका पिता दानी जगद्विख्यात है,
यों खिलाना भिक्षु को उसके लिये क्या बात है!"

(२१)

इस तरह कहकर अतिथि ने तृप्त हो भोजन किया;
जो बचा कुछ अन्न, वह भी डाल कुत्तों को दिया।
अत को केवल बचा जल; पर बचा वह भी नहीं;
आ गया चंडाल प्यासा भूप के आगे वहीं।

(२२)

भूप ने जल भी उसे श्रद्धा-सहित अर्पण किया।
इस प्रकार जगत्पिता की तृप्ति को तर्पण किया।
प्रेम-गद्गद हो अमृतमय वाक्य फिर ऐसे कहे—
"तृप्त हों इससे वही, जो सब जगत् में रम रहे।

(२३)

मैं विषय-वैभव न चाहूँ, राज्य या ससार का,
मैं न चाहूँ इंद्र-पद मद-मूल, द्वार विकार का।
मैं अकेले मोक्ष ही की चाह भी करता नहीं;
है उसे धिक्कार, जो दुख और का हरता नहीं।

(२४)

चाहते जो आप रहना ऐश से, आराम से ;
दूसरे का दुख न देखें, हो अपरिचित 'राम' से ;
और भाई तो न पाकर अन्न-जल भूखों मरें ,
और वे रुपए लुटाकर कीमती भोजन करें ;

(२५)

हैं न वे मानव, उन्हें दानव समझना चाहिए ;
दुख मिले सबका मुझे ही, मुझे इतना चाहिए ।
जल इसे मैंने दिया, यह हो गया सतुष्ट है ;
अब न मुझको भूख अथवा प्यास का कुछ कष्ट है ।"

(२६)

फिर प्रणाम नरेश ने 'हरये नम' कहकर किया ;
सामने विधि, विष्णु, शिव ने तब उन्हें दर्शन दिया ।
भूप के रोमाच हो आया, न वह कुछ कह सके ;
पर न भाव प्रकट किए निज नेत्र उनके रह सके ।

(२७)

हो प्रसन्न नरेश से सब देवतों ने तब कहा—
"धन्य हो, तुमको न कुछ अप्राप्य इस जग में रहा ।
धर्म या कर्तव्य का साराश यह सत्कर्म है ;
ब्रह्म की आराधना का, बस, यहीं तो मर्म है ।

(२८)

आज ली हमने परीक्षा, सिद्ध पाया आपको ;
अब न व्यापेगी हमारी प्रवल माया आपको ।
हैं त्रिलोकीनाथ हम ; तुम माँग लो, जो इष्ट हो ।"
भूप बोले—"देव,बस, ससार का न अनिष्ट हो ।"

(२९)

कुछ न जब इसके सिवा माँगा दृढ़व्रत भूप ने ,
तब किया प्रस्थान कहकर 'धन्य-धन्य' त्रिरूप ने ।
पाठको, यह सत्य है आख्यायिका श्रीव्यास की ;
कुछ नहीं अत्युक्ति इसमें, बात है इतिहास की ।

(३०)

नवयुवकगण ही अकेले जो ग्रहण यह व्रत करें ,
कष्ट सब सहकर स्वदेशी भाइयो का दुख हरें ,
तो बहुत ही शीघ्र उन्नत, सुखी भारतवर्ष हो ;
ईश, यह इस देश में हरएक का आदर्श हो !

५. शोक-सूचक

तिलांजलि

[स्त्री वियोग के अवसर पर लिखित]

(१)

चंद्रिका-सदृश दम-भर खिलकर, हा हत ! हुई अंतर्हित यों ;
कर हृदय हमारा अंधकार, उठ गई जगत् से दम-भर में।
प्रियतमे, देवि, तुम तो अनंत-सौभाग्यशालिनी निश्चय हो ;
बालक-वियोग वेदना नहीं सह सकीं, गई पीछे उसके।

(२)

शिशु के समस्त क्रीड़ा-विनोद फिरते थे आँखों के आगे ;
बच्चे की भोली बातें वे गूँजा करती थीं कानों में।
यह जलती थी जो अग्नि हृदय में, उसका बुझना मुश्किल था ;
बस, इससे तुम चढ़ चलीं चिता पर शांति प्राप्त करने को।

(३)

पर, हे पतिव्रते, स्नेहमयी, तुम शोचनीय हो कभी नहीं।
अब शोचनीय स्थिति में अभाग्यवश मैं ही हूँ बस, पड़ा हुआ।
यह गेह हीन गृह-लक्ष्मी से श्री हीन उदास हुआ, जैसे—
मेरे ही मन की प्रतिकृति-सा बन रहा, बिगड़कर शून्य हुआ।

(४)

ये हैं आभूषण त्यक्त पड़े, निःशब्द हुए सन्नाटे में ;
हैं मलिन तुम्हारे विना पड़े कपड़े भी मेरे-जैसे हो।
श्रृंगार-साज सब आज हुआ स्वामिनी-हीन यों अस्तव्यस्त ,
जैसे समस्त मेरी प्रवृत्तियाँ केंद्र-हीन विस्रस्त हुईं।

(५)

अति उन्नम मंत्र-गीति-सी तेरी गुण-गाथा वह पुण्यमयी,
मिलकर मेरी हृत्तन्त्री से, बजती है हरदम लय-गति से।
बस, तार-तार झनकार उठे, जैसे लहराती हो गंगा ;
पुण्य-स्मृति तेरी शांतिमयी आकर मुझको अपना लेती।

(६)

जब उप काल में स्वर्ण-वर्ण किरणों की आभा देख पड़े ,
तब तेरी उज्ज्वल, स्निग्ध दृष्टि मेरी आँखों में छा जाती।
उस नव प्रकाश में तेरी वह सुंदरता सारी फूट पड़े ;
जैसे तू भक्ति-भरी मुझसे मिलने को भू पर आ जाती।

(७)

मृदु, मंद पवन तव कर-स्पर्श-सा लगकर वेसुध कर देता ;
ताजे फूलों की गंध तुम्हारे आने का धोका देती।
कहता है कौन वियोग हुआ, तुम तो हो मुझमें बसी हुई ;
यह हृदय तुम्हारे सूक्ष्म चित्र को रक्खेगा अति

(८)

जल गया स्थूल, नश्वर शरीर, तो फिर इससे क्या होता है ?
होता है हिंदू लोगों में नश्वर शरीर-सबंध नहीं।
आत्मा अविनाशी माना है, सच्चा उसका ही नाता है ;
परमात्मा तुमको सद्गति दे, यह मेरी हार्दिक अभिलाषा।

तिलक-तिरोधान

(१)

हाय! हाय! हा हत! हरे! यह क्या दिखलाया ?
यों असमय में कठिन शोक का वज्र गिराया!
अरे निर्दयी कठिन काल! कुछ तरस न खाया!
भारत का सौभाग्य-तिलक इस तरह मिटाया!
इस दीन देश का पक्ष ले लड़नेवाला उठ गया,
हा, अत्याचारों से निडर भिड़नेवाला उठ गया।

(२)

लोकमान्य, हे न्यायनिष्ठ, जनता के नायक!
आत्मत्यागी, वीर, देश के सुहृद्, सहायक!
देश-भक्ति का पाठ पढ़ानेवाले, मानी!
पुरुष-सिंह, 'गीता-रहस्य' के लेखक, ज्ञानी!
यों इस स्वराज्य की नाव को अधबिच छोड़ कहाँ चले ?
हा! हा! स्वदेश से मोड़ मुख, नाता तोड़, कहाँ चले ?

(३)

सूर्य अस्त हो गया राष्ट्र के स्वाभिमान का,
स्तंभ गिर गया स्वावलंब की अटल शान का।
मेरु ढह गया राष्ट्र-भक्ति के दृढ़ विधान का,
हाय! रत्न खो गया योग्यता और ज्ञान का।
हा! तिलक-हीन अब राष्ट्र है जैसे विधवा कामिनी,
हर लिया काल विकराल ने महाराष्ट्र का 'मेज़िनी'।

(४)

पृथ्वी ने जिस रोज लाल वह अपना खोया,
वर्षा-मिस आकाश खूब ही उस दिन रोया।
'बाल' गँवाकर बाल बिखेरे भारत-माता,
बिलख रही है, न लख रही है कोई त्राता।
उद्वेग, उदासी छा रही, 'हाय-हाय' का शोर है;
है शोकाकुल सब शत्रु भी, सन्नाटा सब ओर है।

(५)

भारत ही था स्वर्ग और अपवर्ग तुम्हारा,
भारत पर सर्वस्व सदा ही तुमने वारा।
सब जप, तप, व्रत छोड़ देश-सेवा करते थे,
जीते इसके लिये, इसी पर तुम मरते थे।
फिर और कौन-से स्वर्ग को इसे छोड़ तुम चल दिए?
क्यों ऐसे निर्मोही हुए, कोमल हृदय कुचल दिए

(६)

कर्मयोग का तत्त्व कौन अब सिखलावेगा ?
कर्तव्यों की राह कौन अब दिखलावेगा ?
कौन केसरी अब गरजेगा जा लदन में ?
नौकरशाही किसे देख दहलेगी मन में ?
इस देश अभागे की दशा कौन सुधारेगा अहो ?
हा ! सौंप चले किसको, इसे कौन उबारेगा, कहो ?

(७)

वर्णन करने क्या पजाबी कत्ल-आम का,
दड दिलाने या डायर के नीच काम का,
न्यायनिष्ठ पार्लियामेंट का न्याय सुनाने,
या लार्डों की हृदय-हीनता निकट बताने,
या भूखों मरते देश की दशा दिखाने के लिये,
उस जगत्पिता के पास तुम लोकमान्य यों चल दिए

(८)

अच्छा, जाओ देव, दयामय से सब कहना;
प्रिय स्वदेश का ध्यान रहे, सुध लेते रहना।
ऐसी देना शक्ति, देश की भक्ति अटल हो;
दीक्षा जो दे गए गुरो, वह सतत सफल हो।
हम तन, मन, धन, जीवन, सभी अर्पण कर दें देश को;
हों तत्पर स्वराज्य-सग्राम में भज भवदीय निदेश को।

दलित कुसुम

(१)

अहह, अधम आँधी, आ गई तू कहाँ से ?
प्रलय-घन-घटा-सी छा गई तू कहाँ से ?
पर-दुख-सुख तूने, हा ! न देखा, न भाला,
कुसुम अधखिला ही हाय, यों तोड़ डाला !

(२)

तड़प-तड़प माली अश्रु-धारा बहाता ;
मलिन मलिनिया का दुःख देखा न जाता ।
निठुर ! फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिए से ,
इस नवलतिका की गोद सूनी किए से ?

(३)

यह कुसुम अभी तो डालियों में धरा था ;
अगणित अभिलाषा और आशा-भरा था ।
दलित कर इसे तू काल, क्या पा गया रे ?
कण-भर तुझमें क्या हा, नहीं है दया रे ?

(४)

सहृदय जन के जो कंठ का हार होता ,
मुदित मधुकरी का जीवनाधार होता ,
वह कुसुम रँगीला धूल में जा पड़ा है ;
नियति , नियम तेरा भी बड़ा ही कड़ा है !

६ प्रकृति-वर्णन

चाँदनी रात

[चतुर्दशपदी]

नील नभोमंडल में कैसा सुंदर रंग झलकता है।
जिसको देख हृदय-प्याले से रसमय भाव छलकता है।
छाई शुभ्र शरद की शोभा पूर्ण इंदु के मंडल में;
सागर सारा समा रहा ज्यों एक बिंदु के मंडल में।
शुक्ला अभिसारिका सदृश यह शरद-शर्वरी मन-भाई,
प्रिय प्रभात से मिलने को हँसती-सी देखो, हे आई।
चटकीली चाँदनी पड़ी चादर-सी चंद्र-वदन पर है;
तारे हैं, या चाँदी के तारों का काम मनोहर है।
चटकीली चाँदनी मदन-आसव की उपमा पाती है;
ज़रा नज़र पड़ने से ही मुनि को भी मस्त बनाती है।
उस आसव का कलश चंद्र है, इधर-उधर छिटके तारे,
मानो उसका मूल्य मिला जो, उसके सिक्के हैं सारे।
रति-उत्स है चारु चंद्र यह, अथवा कलश सुधा का है?
सुयश-गुब्बारा उड़ा हुआ या भारत की वसुधा का है?

ग्रीष्म

(१)

गरमी के हैं दिवस, बड़ी ही कड़ी धूप में—
उगल रहे रवि अग्नि चक्र के रूप में।
चिनगारी-सी किरण चमकती रेत में;
तह तक सूखी पड़ी भूमि हर खेत में।

(२)

सूखे मुख सब लिए, उदासी छा रही,
सन्नाटे में लपट लूक की आ रही।
राहें सूनी पड़ीं, कहीं कोई नहीं;
आसमान में चील्ह बोलती बस, कहीं।

(३)

वन-वराह के झुंड, हिरन, भैंसे बड़े,
लोट रहे हैं निकल कीचड़ों में पड़े।
बेदम होकर बैल काम करते नहीं;
ऐसे व्याकुल हुए, घास चरते नहीं।

(४)

धनी लोग सब समय बिताते चैन से;
पाते सुख-सामान उसी दम सैन से।
ठंडा पानी और छाँह प्यारी हुई;
पंखे से इन दिनों नई यारी हुई।

(५)

किंतु गरीबों की अवश्य है दुर्दशा ;
खाते हैं हर घड़ी परिश्रम कर कशा।
घोर घाम में धनी लोग जब सो रहे,
तब वे करते काम पेट को रो रहे।

(६)

भाड़ा में मृग थके पड़े, उठते नहीं ;
जीव-जंतु सब छिपे निकल हो सब कहीं।
नव रसाल की डाल पल्लवों से भरी ;
उसमें नीरव पड़ी कोकिला अधमरी।

(७)

लप-लप करते जीभ घाम से घिर रहे ;
बेदम जल के लिये, श्वान यों फिर रहे।
होली-सी लग रही, आग ज्यों जल रहे ;
हुई धुलेंडी, धूल-झकोरे चल रहे।

(८)

दुष्ट मनुज सम सूर्य तपाकर विश्व को,
अस्ताचल को चले, दिखा यह विश्व को—
"है मनुष्य क्या चीज़, देख लो, सब यहीं,
देवों का अभ्युदय सदा रहता नहीं।"

(९)

रवि की किरणें स्वर्ण-वर्ण मन मोहती ;
विस्तृत होकर वृक्ष-शिखा पर सोहती ।
घायल नारी-नयन-बाण के जाल से ,
दिननायक भी देख पड़े कुछ लाल-से ।

(१०)

बहे पसीना, बुद्धि शिथिल हो सो रही ;
उमस बढ़ रही खूब, ऊब-सी हो रही ।
भाप हो उड़े भाव भावना-साथ से—
व्याकुल कवि ने रखी लेखनी हाथ से ।

वसंत का आगमन

[चतुर्दशपदी]

छोड़ पुराने पत्र, नई पोशाक से—
फूल-फलों की लिए डालियाँ हाथ में ,
सफल जानकर जन्म, अदब से सब झुके ,
अगवानी के लिये वृक्ष तैयार हैं ।
पल्लव बन्दनवार तने हैं सब तरफ ,
फूली सरसों, फ़र्श बिछाया खेत में ।
हवा हर तरफ़ राह साफ़ करती फिरे ;
बंदीजन कोकिला करे जय-घोषणा ।

गुन-गुन-गुन गुण-गान भ्रमरगण कर रहे ।
महक रही मजरी, अतर सोई मले—
ललित लता मगलामुखी-सी नाचती ।
शीत भीत हो भगा, देख जिसको, सभी
लोग काँपते, प्रकृति हुई उन्मुक्त-सी ।
नृप वसत का हुआ धरा पर आगमन ।

परिवर्तन

(१)

थे उठते भी हैं अनश्य ही, जो गिरते हैं ;
दुर्दिन के ही बाद सुदिन सबके फिरते हैं ।
देखे दारुण दुःख, वही नर फिर सुख पाते ;
अवनति के उपरात घड़ी उन्नति की आते ।
रवि रात बीतने पर प्रकट होते प्रात समय में ,
बस, यही सोचकर आप भी धीरज रखिए हृदय में ।

(२)

होता प्रथम वसत, ग्रीष्म ऋतु फिर आती है ;
बहे पसीना, अग आग-सी लग जाती है ।
पत्ते फल या फूल, विना जल, जल जाते हैं ;
पशु, पक्षी भी घोर घाम से घबराते हैं ।

फिर शीघ्र देखते-देखते हरी-भरी होती मही ;
आ जाती वर्षा भली सुख देती तत्काल ही।

(३)

कवियों का सर्वस्व, स्वर्ग की शोभा भारी ,
शिव के भी सिर चढा, और आकाश-विहारी ,
अमृत-सहोदर चंद्र, कला जब घटने लगती ,
तब होता है क्षीण, और श्री लटने लगती।
वह किंतु शीघ्र ही पूर्ण हो, होता है फिर अभ्युदय ;
है ठीक नियम यह प्रकृति का, परिवर्तन हो हर समय।

(४)

इतने बडे, अनंत तेज की राशि दिवाकर,
तपते तीनों लोक बीच, पूजित हों घर-घर ,
किंतु समय पर राहु उन्हें ग्रस लेता जाकर ;
कुछ कर सकते नहीं, हजारों हैं यद्यपि कर।
वह पहले होते अस्त या ग्रस्त समस्त प्रभा-रहित ;
फिर होते मुक्त, प्रकाश से युक्त, पूर्व मे अभ्युदित।

(५)

जीव मरण के बाद जन्म पाता है देखो ,
कृष्णपक्ष के बाद शुक्ल आता है देखो।
चलती है हेमंत-हवा जब जोर दिखाती ,
तब होता पतझाड़, न पत्ती रहने पाती।

फिर वही वृक्ष होते हरे, नव-पल्लव-शोभित सभी,
बस, इसी तरह होंगे सुखी उन्नत हो हम भी कभी।

पुराना और नया

(१)

पुराना सभी है, नया कुछ नहीं;
सभी है उपस्थित, गया कुछ नहीं।
वही काल है, सब वही देश है;
पुरातन पुरुष का नया वेश है।

(२)

वही है मही, है जगत् भी वही,
वही है असत्, और सत् भी वही।
वही सूर्य है, चन्द्र, नक्षत्र हैं;
वही वृक्ष हैं, पुष्प हैं, पत्र हैं।

(३)

वही खेल हैं, है नदी भी वही;
वही है भलाई, बदी भी वही।
वही ग्रीष्म, हेमन्त है, वृष्टि है;
कहाँ तक कहें, सब वही सृष्टि है।

(४)

जिसे हम नया मानते हैं, सभी
न वह था नया, है, न होगा कभी।
सदा चक्र यों ही चला जायगा,
पुराना नया रूप दिखलायगा।

होली

फागु ऐसो सुखदाई, खेलिए सब मिलि भाई।
हेल-मेल को रंग बनाओ, घोरो विनय-जल नाई,
सराबोर सब ही कहँ कीजै, मन-पिचकारी सुहाई।
रंग चोखो चढ़ि जाई। फागु०।
द्रोह, कुटिलता केमुख कारिख वेगिहि देहु लगाई;
गौरव को गुलाल बरसावहु, दुखियन कहँ अपनाई।
धर्म सों पाय बड़ाई। फागु०।
ज्ञान-अगिनि सुलगाइ भली विधि,विद्या-वायु चलाई।
हठ-कुरीति लकरी लै डारहु, स्वावलंब-गुन गाई।
होइ सब भाँति भलाई। फागु०।
जाति-समाज-देस-हित ही को पीजै नसा प्रिय भाई!
भाषा-भाव-भेस अपनोई अपनावहु चित लाई।
मेल-मेळा मिलि जाई। फागु०।

गारी, मार-पीट की बातें हैं न जगत-मन-भाई ;
इनकी धूरि उड़ावहु हित सों ऋषिकुल के अनुयाई ।
गुरू ह्वै न बनिए अताई । फागु० ।
गायत्री सन्ध्या हू भूले, कैसी है लोक-हँसाई ;
स्वाँग बने तुम, लूलू कहैं सब, अब तौ उठौ चेत पाई ।
करौ कछु कीर्ति-कमाई । फागु० ।
सम्मति-सहित सुमति सों सपति तुलसीदास बताई ;
जहाँ कुमति, तहँ बिपति सदाई जग परतिच्छ लखाई ।
देखिए आँखि उठाई । फागु० ।

होली का गुलाल

गारी दै अगारी आजु न्यारी निज-मंडल सों
नारी सुर-नारी-सी बिहारी को छलै गई ,
धूँधरि मैं धाय धँसि धरि लीन्हो, फेरि फिरि
अगन को रंग की तरंगन भिजै गई ।
चीरें, बलबीर पै अबीर बीर डारि, इतै
अंजन लै आँगुरीन अँखियान दै गई ,
होरी मैं ठगोरी डारि गोरी बरजोरी करि,
भोरी लै गुलाल की सु लाली लाल कै गई ।

तन्मय

(१)

क्यों इतना है चद्र मनोहर ? रूप उसी का पाया है ;
क्यों इतना रगीन कमल है ? उसका रग चुराया है ।
क्यों इतना है ललित कोकिला का सगीत हृदयहारी ?
उसने भी उस प्रियतम ही का मीठा बोल सुनाया है ।

(२)

क्यों यों स्निग्ध सुगधित कोमल मलय-पवन है ? हाँ, वह भी ,
स्पर्श उसी का, पाकर, लाकर सब जग के मन भाया है ।
गगन-भुवन में व्याप्त सदा ही रूप-प्रकाश उसी का है ;
विधि ने सब सौंदर्य उसी से लेकर विश्व बनाया है ।

(३)

उसके चरण हृदय में रखती पृथ्वी, इससे ही उसको
मैं करता हूँ प्यार हृदय मे ; मन मे वही समाया है ।
इस जीवन के दु ख, कमी सब, भाग्य-चक्र के फेर सभी ,
उन आँखों की किरण-तले रह, मैंने सहज भुलाया है ।

---

७. रसमयी रचना

उपालंभ

(१)

मैंने मन दे दिया, मगर मन मिले नहीं क्यों ?
ये बातें, प्रिय, मन की बातें छिपा रहीं क्यों ?
लाख छिपाओ, मगर न छिपने की ये बातें,
इन बातों से प्रकट हो रही हैं सब घातें।

(२)

हृदय-राज्य का तुम्हें अधीश बनाया जब है,
फिर भी यह सकोच, कहो, तुमको क्यों अब है ?
अपने से भी भला उचित है अतर रखना ?
होकर ऐसे चतुर, न जाना हृदय परखना!

(३)

मानस के हो कमल, सुगध न क्यों देते हो ?
खिलकर, खुलकर क्यों न निमुग्ध बना लेते हो ?
तुम्हें पूर्ण विश्वास अभी तक क्या न हुआ है ?
या कोई अपराध देखकर मान हुआ है ?

(४)

यों बनकर गभीर, हटो, हटते हँसमुख से ?
हँस दो मेरी कसम! न वचित हो इस सुख से!

आता हूँ मैं पास, आप क्यों हटते जाते ?
हटने से मिट नहीं सकेंगे पहले नाते ।

(५)

हटनेवाले यहाँ नहीं हैं तेरे दर से ;
तेरे द्वारा ध्यान लगाए हैं हम हर से ।
माया-छाया छोड़ छिपा है तू परदे में ;
रजोनिमीलित दृष्टि हुई जाती गरदे में ।

(६)

मगर ढूँढकर पता लगा ही लेंगे हम भी ,
जीवन-मणि से हृदय लगा ही देंगे हम भी ।
जो चाहो, सो करो, न इसका हमको दुख है ;
अच्छा है यह खेल, मेल से इसमें सुख है ।

(७)

रूठोगे, तो तुम्हें मनाना भी आता है ;
बिगड़ोगे, तो तुम्हें बनाना भी भाता है ।
आओगे, तो तुम्हें हृदय में बिठलावेंगे ;
आओगे जो नहीं, ढूँढ तुमको लावेंगे ।

(८)

हमको तो है चाह, सदा वह झलक दिखा तू ;
करना प्रेम अ-काम काम से हमें सिखा तू ।
तू है लापर्वाह, तुझे पर्वाह न होगी ;
करना हमें निवाह, किसी में आह न होगी ।

(६)

यह चंचलता गई, हुए वे दिन सपने-से ;
अपण ही कर दिया हृदय अपना अपने से ।
पतित कहो, तो भले गले से नहीं लगाओ ;
चरण-चिह्न तो हृदय-बीच आकर कर जाओ ।

लज्जावती

(१)

हाँ-हाँ, छुओ मत, यह लता लज्जावती है आड में ;
दबकी हुई कब की पड़ी, मुरझा गई-सी झाड़ में ।
संकोच से एकांत में रहकर बिताती जिंदगी ,
बस, छेड़-छाड़ करो न कुछ, अच्छी नहीं यह दिल्लगी ।

(२)

ये रंग लताएँ और हैं, देखो, उठाए सिर खड़ी ।
हाँ, अंग में फूली समाती ही नहीं होकर बड़ी ।
है किंतु यह विरही जनों के हृदय की प्रतिकृति बनी ;
रखती किसी से कुछ प्रयोजन ही नहीं, हो अनमनी ।

(३)

मधकर करे आदर नहीं, इसका न इसको खेद है ;
माली न देता ध्यान, इससे भी नहीं निर्वेद है ।
है रूप-रंग न अंग में, इसका न कुछ भी सोच है ;
उँगली उठाते लोग फिर क्यों, बस यही संकोच है ।

(४)

हम लोग सचमुच अंध हैं, जो रूप पर आसक्त हैं।
बस, बाहरी आडंबरों के पूर्ण अनुगत भक्त हैं।
लज्जावती-जैसी लता, जो वास्तविक रमणीय हैं,
वे ही हमारी दृष्टि में, हा-हा, अनादरणीय हैं!

नागरी

अर्थ[1] निकरत है, अनर्थ[2] न करत, वर
बरन[3] हरत हिय, हिय मैं बिचारिए,
शुद्ध[4] त्यों सरस[5], पद[6] कोमल, अमल अंग[7],
गूढ़ धुनि[8], पुनि बहु भूषण[9] सँवारिए।
सुंदर, सुलच्छन[10], विलच्छण चमतकार,
बिगत-विकार[11], ताहि काहे को बिसारिए?
नागर[12]-निरादर सों नागरी-सी छीन, यहि
नागरी गरीबिनि को नेक तौ निहारिए।

---

१ मतलब और अर्थ। २ अनर्थ और अर्थ की गड़बड़। ३ रूप और अक्षर। ४ चाल-चलन में नेक और पढ़ने में शुद्ध। ५ रसीली और रसों से युक्त। ६ पैर और पद। ७ हाथ पैर आदि और कविता के दसों अंग। ८ आवाज़ और साहित्य का अंग ध्वनि। ९ गहने और अलंकार। १०. स्त्री के अच्छे लक्षण और अच्छे लक्षणों अर्थात् गुणों से युक्त कविता। ११ मानसिक विकार और लिखने में कुछ और पढ़ने में कुछ होने का विकार। १२ पति और नगर निवासी।

८. फुटकल

सत्कवि

(१)

जो कायर को करें शूर कविता के बल से,
जो लुब्धों को उच्च बनाते हैं कौशल से,
जिनकी मानस दृष्टि सृष्टि अद्भुत करती है,
दुष्टों की मडली सदा जिनसे डरती है,
कतर-ब्योंत की ही जिन्हें काबलियत कोरी नहीं,
शठता, हठ या क्रोध की जिनमें कमज़ोरी नहीं,

(२)

समझें तृण-सा तुच्छ करोड़ों के भी धन को,
किंतु लगाते सदा अर्थ ही में जो मन को,
भाषा का भडार भावना से भरते हैं,
ऐसे देश, समाज, जाति का हित करते हैं,
अपनी कृति पर आप ही ऐंठे जो फिरते नहीं,
दुष्ट दुराग्रह के गहन दलदल में गिरते नहीं,

(३)

तुच्छ विषय जो छोड़ सार्वभौमिक बन जाते,
` - विचार, हृदय की बात बताते,

हो अग्रणी अनेक रीतियाँ बुरी हटाते,
मीठी चुटकी, कभी कड़े कोड़े सटकाते,
स्वावलम्ब-सेवी सतत, स्वाभिमान की मूर्ति जो,
करते रहते सर्वथा समय-समस्या-पूर्ति जो,

(४)

माँग-माँगकर मान नहीं मानी बनते हैं,
मन-ही-मन वागीश बने न कभी तनते हैं,
अपने से अपमान किसी का कभी न करते,
नम्र भाव से उन्नति के पथ पर पग धरते,
"दया धर्म का मूल, त्यों नरक-मूल अभिमान है"—
महावाक्य यह लोक में जिनकी नीति प्रधान है,

(५)

मसजिद, मंदिर, चर्च एक हैं जिनके लेखे,
शास्त्र जिन्होंने सब समान श्रद्धा से देखे,
सबमें अपना जिन्हें देख पड़ता महत्त्व है,
जिनके लेखे वस्तु-मात्र में एक तत्त्व है,
ज़रा-ज़रा मत-भेद पर कभी कलह करते नहीं,
स्व-प्रतिष्ठा की निभृत निष्ठा पर मरते नहीं,

(६)

जिनकी कृति, हो अमर, जगत् में पूजा पाती,
जनता सुनकर सरस सूक्तियाँ वश हो जाती,

प्रतिभा जिनकी सदा बनी रहती है दासी ,
किया करे लेखनी सदा नव रस-वर्षा-सी ,
सुकवि सरल सिद्धांत के, जो न पंडितम्मन्य हैं ,
भक्त भारती के भले वे नरनायक धन्य हैं ।

कौन कृती कहलाते हैं ?

(१)

जो जाति-जगत् में जीवट के जीवन की ज्योति जगाते हैं ,
भगवान्-भरोसे भय-भ्रम की भीषण भावना भगाते हैं ,
जो साहस से सबको सँभाल सवथा सुपथ पर लाते हैं ,
गरुओं का गौरव ग्रहण किए, गुणियों के गुणगण गाते हैं ,

(२)

समदर्शी सत्यासक्त सतत सुख मूल सुनीति सुनाते हैं ,
दुर्भाव दंभ से दूर, दया, दंगे खुद दब जाते हैं ,
उर उन्नति का उत्साह उदित, उद्देश्य उदार उठाते हैं ,
उद्योग उसी का उपयोगी, न उपद्रव उन्हें उनाते हैं ,

(३)

खुश रहते खूबी से, यद्यपि खल खलते, खूब खिझाते हैं ,
खुद खून-खराबी खोते हैं, खतरे से खता न खाते हैं ,
हैं अहंकार से अलग, और आदर्श अमल अपनाते हैं ,
अपने अपहृत अधिकारों पर अविचल अधिकार जमाते हैं ,

(४)

आलस्य-हीन, आनदी है, औरों का आदर करते हैं,
अति-अत्याचार मिटाने में मरते हैं, जरा न डरते हैं,
भरपूर भलाई से भरसक, हामी हैं सदा स्वदेशी के,
मन पर है छाप स्वदेशी की, तन पर हैं कपडे देशी के,

(५)

हिंसा से हरदम दूर रहें, विद्रोही नहीं विदेशी के,
कर्तव्य-प्रतिष्ठा-निष्ठा से कायल हैं दूरदेशी के,
रुचि राजनीति से रखते हैं, नर खोटा-खरा परखते हैं,
है लाभ-लोभ में लिप्त नहीं, लालच की लीला लखते हैं,

(६)

धर धीरज धर्म-धुरधर जो धूर्तों को धता बताते हैं,
नय-नदी-नीर में निर्मत्सर, नेकी कर, नित्य नहाते हैं,
चल चाल चली आई चिर की, चतुरों के चित्त चुराते हैं,
छल-छद छुडाकर छोटों से, छूतों की छाप छिपाते हैं,

(७)

सब जिनके ढग ढोंग के ढब का ढीला ढाँचा ढाते हैं,
तप-तत्पर, रहते तृप्त, ताप तीनों ही नहीं तपाते हैं,
वे ही पृथ्वी पर पूर्ण प्रेम पहचान पूज्य-पद पाते हैं,
वे ही कुल-दीपक, कर्म निष्ठ, कृतकृत्य, कृती कहलाते हैं।

वैद्य

(१)

जीवन-दाता वैद्य, वैद्य की श्रेष्ठ वृत्ति है ;
होती इसमें पर-हितैषणा की प्रवृत्ति है ।
सबसे बढ़कर प्राण हमें प्यारे होते हैं ;
उन्हें बचाता वैद्य : सभी सुख से सोते हैं ।
प्राचीन वैद्य थे सर्वथा पूज्य, प्रथित औदार्य में ;
उनकी ख्याति सत्कृत हुई आर्यों के सत्कार्य में ।

(२)

धन्वतरि अवतार ईश का माने जाते ;
अमृतपाणि सब वैद्य कहाते उनके नाते ।
सुश्रुत-चरक प्रशस्ति विदेशों में व्यापी है ;
ग्रंथ देखकर विज्ञों ने महिमा मापी है ।
ऋणी जगत् सब हो रहा उनके अनुसंधान का ;
अब तक देखा जा रहा चमत्कार उस ज्ञान का ।

(३)

किंतु बहुत-से वैद्य, कहें क्या, वे कैसे हैं ;
उनके तो कर्तव्य आदि सब कुछ ऐसे हैं ।
उनको क्या, रो मोल दवा फेंकें, या खावें ;
रोगी हों आराम, और या मर ही जावें ।

सब अनुभूत प्रयोग हैं, विज्ञापन पढ़ लीजिए ;
राम-बाण अव्यर्थ है, दाम दवा के दीजिए ।

(४)

पेट पालना मुख्य मान, कर्तव्य न पालें ;
हाय-हाय, ये धूर्त जगत् को भ्रम में डालें ।
वैद्यों का विश्वास उठ रहा इनकी कृति से ;
होती सबकी हानि अहो, इस प्रकृति-विकृति से ।
बचा चाहिए विज्ञ हो, विज्ञापन-वाग्जाल ,
धन-जीवन की हानि है विज्ञापनिए माल से ।

(५)

पढ़ा न जिसने ग्रंथ कभी गुरु-मुख से कोई ,
फढा नहीं जो कहीं, कभी नाडी न टटोई ,
बन बैठा चट वही देखिए वैद्य-रत्न है ;
दिनारात कर रहा प्रतिष्ठा का प्रयत्न है ।
घड़ी, छड़ी, चशमा-सहित, घटाटोप घनघोर है ;
जहाँ देखिए, सब कहीं वैद्यराज का ज़ोर है ।

(६)

अख़बारों में वैद्यराज विज्ञापन देते—
"मुफ़्त मिलेगी दवा; फीस भी बहुत न लेते ।
सुन लो, सुन लो, बात तुम्हारे मतलब की है;
जितने जग में रोग, दवा यह उन सबकी है ।

एक बूँद पी लो फक़त, यह अव्यर्थ प्रयोग है ;
यह फक़ीर की दी जड़ी, रखती एक न रोग है।

(७)

दमा, दाद, ज्वर, रक्तपित्त, पीनस मिट जाती ;
आमवात, कटिवात, अर्श, क्षय, मेह मिटाती।
मूत्रकृच्छ्र, उपदंश, वीर्य के दोष दवाती ;
कमज़ोरी की कभी शिकायत पास न आती।
हो असाध्य भी रोग, तुम अच्छे होगे शर्तिया ;
नए वर्ष के हर्ष में ले लो लोगो, लुटा दिया !''

(८)

भोले कर विश्वास दाम दे दवा मँगाते ;
ठगे हुए निश्वास वेध पर फिर कब लाते ?
इससे होती जन-समाज की बड़ी हानि है ;
सद्वैद्यों को देख-देख हो रही ग्लानि है,
इससे इनका दमन ही अभी सर्वथा श्रेय है ;
ऐसे वैद्यों की दवा और चिकित्सा हेय है।

(९)

लोभ-हीन, सत्प्रकृति, शास्त्र का पूरा पंडित ,
हँसमुख,प्रौढ़,प्रवीण,अनुभवी,गुणगणमंडित ,
जाने सभी 'निदान', 'प्रकृति'से परिचित होवे ,
कुछ ही दिन दे दवा रोग को जड़ से खोवे ,

ऐसा प्रसिद्ध जो वैद्य हो, सिद्धहस्त हर काम में ,
वही सदा उपयुक्त है—स्मरण रहे इतना हमें ।

स्त्री-शिक्षा

(१)

सम हैं दोनों नर, नारी , ज्ञान-प्राप्ति के अधिकारी ।
एक वृक्ष के दो फल हैं ; एक डाल के दो दल हैं ।

(२)

अथवा दोनों को कहिए , एकी रथ के दो पहिए ।
फिर क्यों एक बने ज्ञानी ? रहे दूसरा अज्ञानी ?

(३)

यह कैसी है मनमानी ? न्याय-नीति की नादानी !
अर्द्धांगिनी कहाती हैं , मगर मूर्ख रह जाती हैं ।

(४)

मूर्ख प्रिया शिक्षित नर की ; होती व्याधि निकट घर की ।
उसका हो सहवास अगर , नरक नहीं उससे बढ़कर ।

(५)

कूट, कटु वचन कहती है ; बिना आग के दहती है ।
आप अपढ़, अवगुण लादे ; बच्चा को शिक्षा क्या दे ?

(६)

पढ़ी-लिखी नारी होगी, पतिव्रता प्यारी होगी ।
पढ़े पुराण पवित्रों को, सीता-सती-चरित्रों को ।

(७)

धर्म-कर्म निज जानेगी, गुरुजन को भी मानेगी।
सकट में धीरज देगी, कभी न तुमको तज देगी।

(८)

दुख में, उसे बाँट लेगी; सुख में दूना सुख देगी।
सदा करेगी पाबन्दी कभी न रहने की गन्दी।

(९)

मधुरभाषिणी घर की श्री होती सदा सुशिक्षित स्त्री।
देशोन्नति हो ध्येय अगर, या समाज-सेवा व्रत भर,

(१०)

तो भी साथ स्त्रियों को लो; उत्तम शिक्षा उनको दो।
बिना स्त्रियों के कभी नहीं होने का कुछ काम कहीं।

(११)

हर पहलू से गोर करो; बुद्धि खर्च कुछ और करो।
स्त्री-शिक्षा आवश्यक है; प्रेय-श्रेय-श्री-दायक है।

(१२)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, या वनिए, स्त्री शिक्षा-प्रेमी बनिए।
खूब बढाओ स्त्री-शिक्षा; यह माँगे भारत भिक्षा।

(१३)

ईश्वर, स्त्रियाँ सुमार्गी हों; मैत्रेयी या गार्गी हों।
लीलावती, सुशीला-सी; सावित्री-सी, सीता-सी।

(१४)

साक्षर स्त्रियाँ अगर होंगी, विदुषी सब घर-घर होंगी,
दुर्गति दूर भगा देंगी ; भारत-भाग्य जगा देंगी ।

(१५)

तब सब दुख दूर होंगे ; बाधा-विघ्न चूर होंगे ।
सब उद्योग सफल होंगे ; मुश्किल काम सहल होंगे ।

सर्प और खल

([illegible])

सर्प और खल, इन दोनों में किसको आप अधिक जानें ?
मेरा मत तो यही, सर्प से खल को आप बड़ा मानें ।
चोट-चपेट पड़े यह डसता, खल यों ही डस लेता है ;
निकट गए यह चोट करे, खल दूरी से दुख देता है ।
इसके काटे का उपाय है, उसके काटे मंत्र नहीं ,
उसके मुख में विष है, इसके विष ही विष है सभी कहीं ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दोनों के प्रतिकार तीन ही, विद्वानों ने बतलाए—
मुख-मर्दन, या दाँत-तोड़ना, या हट जाना, जब आए।

अदालत

(१)

अदालत लड़ना झखमारी ; हिमाक़त यह सबसे भारी।
अगर दौलत-इज़्ज़त प्यारी,
न चाहो जो अपनी ख्वारी,
कचहरी की छोड़ो यारी,
हाथ जोड़ो सब नर-नारी,
न्याय ऐसे की बलिहारी ; अदालत लड़ना झखमारी।

(२)

मुहर्रिर, मुंशी, चपरासी,
सभी अमले सत्यानासी,
वकीलों की चलती ख़ासी,
लूट दिन में बारामासी,
करें क़ानूनी ठग आरी ; अदालत लड़ना झखमारी।

(३)

अदालतबाज़ी जिसने की,
बिका उसका सब कुछ, घर भी,

रह गई पास नहीं कौडी,
रहा वह घूँट लहू के पी,
हुई मरघट की तैयारी, अदालत लड़ना झखमारी।

(४)

जीतना हार-बराबर है,
हारना मौत सरासर है,
कोई झगडा तुममें गर है,
फैसला घर का बेहतर है,
करो पचायत फिर जारी; अदालत लड़ना झखमारी।

स्वागत

[लाला लाजपतराय के अमेरिका से लौटकर भारत आने पर]

लाज-पत रक्खी जा अमेरिका में भारत की,
चरचा चलाई देश-दुर्दशा की ओर से;
दम्भ को दबाया, न्याय सबल बनाया,
कुछ करके दिखाया उस दुनिया के छोर से।
सुन पचनद की व्यथा की कथा दौड़ पडे,
शोक में शरीक होने, एक ही करोर-से।
आगत स्वतत्रता का युग है तुम्हारे साथ,
स्वागत तुम्हारा भव्य भारत की ओर से।

चेतावनी

तुझे छोड़ेंगे, छेड़ेंगे लोग, मगर तू हताश न हो, कुछ सोच न कर,
तेरी आशा-लता भी उखड जो पड़े, फल भी न मिले, रह तू तत्पर।
इस राह में घोर अँधेरा ही है, नहीं काम करेगी ज़रा भी नज़र,
पर क्या रुकना भी है योग्य तुझे? मन में ले विचार, न टल तिल-भर।
कहीं ऐसा भी होगा, जलावेगा दीप, तो दीप जलेगा हवा में नहीं;
बस, ज्ञान-प्रकाश से मोह मिटा, बढ आगे, न खौफ ज़रा भी उधर।
सुन तेरी कथा दुख-दर्द-भरी वन के पशु-पक्षी करेंगे दया,
घर में पर पत्थर के ये हृदय न पसीजेंगे, खेद मगर तू न कर।
दरवाजे को बंद जो पावेगा, तो फिर आवेगा क्या? कुछ सोच सही,
वहाँ शायद ठेलने से भी नहीं दरवाजा खुलेगा, न होगा गुजर।
पर तू तो स्वदेश का भक्त हुआ, सब छोड स्वयं अनुरक्त हुआ,
उसकी ही भलाई में यार तू मर, कुछ कीर्ति कमा ले तो होगा अमर।

भिक्षा

उन्नति करहु मिलि नित नई।
करि परिश्रम और उद्यम, मेटि मन-मलिनई,
यवन-हिंदू-भेद भूलहु, होइ मंगलमई।
निज-वनिज, कारीगरी दिन-दिन लहै सुघरई,
राष्ट्र ही की होहि पूजा, छोड़ि सब भगतई।

द्रोह, दंभ, दुराव, दुर्मति, दीनता, दुचितई ,
इन बुराइन त्यागि, गहिए ज्ञान-गुन-गरुअई

बेढब लेखक

सब विषयों के दिग्गज पंडित स्वयंसिद्ध, प्रतिभा की मूर्त ;
कालम-के-कालम कर काले कलम करे पत्रों की पूर्ति ।
बेढब लेखक की बलिहारी, हैं कलियुग के व्यास नवीन ,
लेखों की टकसाल, टकलची कविता की कीमती मशीन ।

कल्पवृक्ष के प्रति

कल्पवृक्ष, कहलाते सुरतरु, करो कामनाएँ पूरी ;
यही जान प्रार्थीजन आते; मगर करो तुम मगरूरी ।
सोचो तो, क्या यही उचित है बढ़े हुए सपत्रों को ?
अथवा, समझाना है निष्फल तुम-से जड़तापत्रों को ।
उन्नत, उदार तू त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ ,
सागर से जन्म तेरा सर्वथा अमल है ;
देवतों के पास वन नंदन के बीच वास ,
चंदन से वंदनीय तेरा परिमल है ।
किंतु पहचानता नहीं जो निज शत्रु-मित्र ,
तेरी जड़ता का यही चिह्न तो प्रबल है ।

ऐरे कल्पवृक्ष, तेरे एक जो विवेक रहे,
तेरी ये विशेषता तो तब ही सफल है।

आँसू

(चतुर्दशपदी)

दुखियों का धन, लड़ी मोतियों की, जिसका है मोल नहीं;
सच्ची सीपी से निकली यह, सदा सुलभ है सभी कहीं।
लासानी पानी, कर देता मणियों की आभा फीकी;
दम-भर में क्रम-क्रम कम होकर आग बुझे इससे जी की।
विधवा और अनाथों का भी अलंकार है यह असली;
इसके आगे तुच्छ सदा हैं कंगन, कड़े, हार, हँसली।
सहृदय, चतुर जौहरी ही बस, क़दर कर, दर भी जानें;
अंधे धंधेवाले क्या अभिमानी इसको पहचानें।
मुक्ति-मंत्र के अक्षर अथवा ये अमोघ मन में मानो;
हृदय-गगन-गंगा की बूँदें पतित-पावनी पहचानो।
पाप-ताप-संताप बहाने को या मानस-धारा दो;
पुण्य-बीज, या करुणा-क्यारी सींचा करें हजारा दो।
कठिन काठ-से हृदय चीरनेवाले हैं या आरे दो।
निर्दय हृदय आर्द्र करने को अथवा चल फ़ुहार दो।

पुत्र-प्राप्ति का परिणाम

(१)

लालायित लाला लल्लूमल, लड़के की लालसा लगी ;
यन्त्र-तन्त्र-मन्त्रों से अब तक नहीं, हाय, तकदीर जगी ।
एकाएक एक दिन सूखी हुई कामना-कली खिली ;
एक करामाती पंडितजी आए हैं यह खबर मिली ।
सुना—सिद्ध हैं उन्हें शारदा, वह सब कुछ कर सकते हैं,
कर्म-रेख पर मेख मारकर कष्ट कठिन हर सकते हैं ।
बस, फिर क्या था, लल्लूमल को मुँहमाँगी मिल गई मुराद,
घर पर उन्हें बुलाकर पूजा, और कहा यों उसके बाद—
"महाराज, चिंता संतति की सदा सताती रहती है,
घरवाली तो रोती-धोती विष खाने को कहती है ।
आप कृपा अब कर, पाप पुर्बले जनम के मिट जावें,
हम हँसता-खेलता हुआ अनमोल लाल प्यारा पावें ।"
हो प्रसन्न तब पंडितजी ने कहा—"कृपा से ईश्वर की
शीघ्र पुत्र होगा, शोभा भी निरानंद सून घर की ।
यज्ञ किया दशरथ ने देखे, पुत्र-रत्न पाए थे चार,
क्या न देवता कर सकते हैं, जो हो श्रद्धा का उपचार ?"
लालाजी ने हाथ जोड़कर गद्गद स्वर से पुनः कहा—
"धन्य भाग्य मेरे, जो दर्शन मिले आपके आज अहा !
मेरी उमर ढल चुकी, सिर के गिरते, पकते जाते बाल ;

लटकी खाल, गाल में गड्ढे, धीमी चाल, बुरा है हाल।
चिंता यही रहा करती है, यह धन-रत्न असख्य, अपार,
भोग करेगा कौन, पिंड-जल देगा, लेगा हमें उबार ?
अब जो कृपा आपने कर दी, भाग्य दास का चमक गया,
विमल हँसी से जो बच्चे की अंधकार-घर दमक गया,
भेंट करूँगा मैं चरणों में एक लाख रुपए तत्काल;
हो प्रसन्न मेरी घरवाली भी कर देगी मालामाल।"
बोले पंडित—"धीरज धरिए, घबराने का काम नहीं;
पुत्र न हो, तो कभी जन्म-भर लेना मेरा नाम नहीं।
कल से पूजा-पाठ और जप मैं करने लग जाऊँगा,
परमेश्वर की कृपा हुई, तो सूनी गोद भराऊँगा।"

(२)

पति, पत्नी दोनो कुछ दिन में पाकर पुत्र प्रसन्न हुए;
मिला गृहस्थी का गौरव सुत, अभिनन सुख-सपन्न हुए।

लाला—

"कहो, प्रसन्न हो गई अब ता ? इच्छा पूर्ण हुई प्यारी ?
यह सुस्ती मिट गई तुम्हारी ? गई उदासी वह सारी ?"
कहा ललाइन ने तब हँसकर—"कृपा तुम्हारी ही तो है ?
इसका सारा श्रेय असल में उन पंडितजी ही को है।
दिया लाल अनमोल हमें यह, थी कैसी सच्ची तरकीब !
यह जो पूजा-पाठ न करते, यह दिन होता कहाँ नसीब !"

लाला—

"यही सही जी, बस, अब ईश्वर इतना और सहायक हो;
हम लोगों के आगे ही यह पढ़-लिख करके लायक़ हो!"

ललाइन—

"लायक बने? अजी लायक तो स्याना होकर होगा आप;
मुझे और ही है अभिलाषा, जो पुरखों का पुन्न-प्रताप
है कुछ, तो दस-पाँच बरस में बहू ब्याहकर लाऊगी,
दोनों का मुख देख-देखकर आँखों का सुख पाऊँगी।"

लाला—

"करने लगीं अभी से तुम तो अरे ब्याह के मसूबे!
क्या जानो तुम, कितने घर यों दुख के सागर में डूबे!
कहा किसी ने सच है, स्त्री के बुद्धि बहुत कम होती है;
स्त्री की जाति मोह-ममता वश संतति का सुख खोती है।
पहले पढ़-लिख तो लेने दो, खूब बढ़ा लेने दो ज्ञान;
होगा उसके बाद ब्याह का उत्सव, गौना गर्भाधान।"

(३)

पिता—

"बेटा, तेरे ऊपर मैंने खर्च कमाई की सारी;
लायक़ तुझे बनाने की धुन सदा रही मुझको भारी।
पर न किया तूने खयाल कुछ, पालन किया न निज कर्तव्य,
विना परिश्रम विद्या चाही, व्यर्थ उड़ाया सारा द्रव्य

दो-दो दफ़े फेल बी०ए० में होना है क्या कुछ आसान ;
करते हैं तारीफ़ सभी तो, खूब बढाया मेरा मान !
अब की तो तू कर ले बेटा, मेहनत करके बी०ए० पास,
मर तो सकूं शांति से जिसमें अंत-समय तो हूँ न उदास !
बुरा न मानो, तुम्हीं बताओ, इतने बड़े हुए, लेकिन
अच्छा काम नाम पाने का किया कौन तुमने किस दिन ?
सिर्फ साहबी ठाट दिखाना, मुँह में सुलगा हुआ सिगार,
और कोर्टशिप करते फिरना, क्या है यही सभ्यता-सार ?"

पुत्र—

"फादर—नहीं, पिताजी, अब तो माफ कीजिए मैं इस बार
पास परीक्षा कर ही लूँगा, आया अगर कहीं न बुखार।

(स्वगत)

खूब ! खुलासा खूसट हैं खुद काला अक्षर भैंस-समान ;
मगर मुझे देते हैं ताने और जमात अपनी शान।
कितना बड़ा और मुशकिल है कोर्स आजकल अँगरेजी,
क्या जानें यह, दिखा रहे हैं इसीलिये इतनी तेजी।
पढ़ते आप, समझते तो फिर पढ़ना भी है कैसा पाप !
मोटी अक़्ल न सूझे—'होगा वैसा बेटा, जैसा बाप !'
सच तो यह है 'ओल्ड फूल' यह सठिया गए जरूर-जरूर,
मुझे निकम्मा, नालायक़ भी, और जानते हैं मग़रूर।
गाना में पढ़ने-लिखने में उतना रखता नहीं कमाल ;

पर क्रिकेट, हाकी, टेनिस त्यों फर्स्ट क्लास खेलूँ फुटबाल ।
सोलहगुट्टी, चौसर, पॉसे, सेसर, चानस तक है याद ;
है शतरंज शुमार निराला, गंजीफे का हूँ उस्ताद ।
नामवरी के काम करूँ मैं, जाऊँगा अब 'रेस' जरूर ;
होटल में जाकर सीखूँगा जेंटिलमेनी के दस्तूर ।
समझदार जो होते फादर, मेरे तबले की तारीफ
करते, और गौर से सुनते मुझ आशिक्र की कुछ तसनीफ ।"

(४)

पुत्र—

"दफ़्तर से घर पर आते ही आफत मे पड़ जाती जान ;
मुनुआ की मा करे आपकी सख्त शिकायत, है हैरान ।
मेरी नहीं समझ में आता, गई आपकी अक़्ल कहाँ ?
खा-पीकर चुप-चाप क्यों नहीं पड़ रहते हैं आप यहा ।
रहते पड़े अगर ड्योढी पर, तो फिर क्या झखना पडता ?
दरवाजे की निगरानी को नौकर क्यों रखना पडता ?
यह भी होता नहीं अगर, तो एक किनारे पड़े रहो ;
बक-बक झक-झक हक-नाहक़ क्यों करते सिर पर खड़े रहो?
पहले का वह गया जमाना, राज खूसटों का जब था ,
बुड्ढों की थी चलती उनका अमल-दखल घर में सब था ।
लो उधार यह नई सभ्यता, है सुधार की स्कीम नई ;
अब है नई रोशनी के दिन, मिली हमें तालीम नई ।

पुरखे पहले थे हम सबके नीम-जंगली और गँवार,
सभ्य देश हँसते हैं उनको, हम होते लज्जित लाचार।
अब हम सब जेंटिलमैनों ने अपनी सभ्य बनाई चाल;
याद रहे, अब तुम बुड्ढा की गल सकती है यहाँ न दाल।
कान खोलकर सुन लो, देखो मेरी बीबी का अपमान,
या उनसे तकरार करोगे, अथवा हुक्म न लोगे मान,
तो निकाल ही दूँगा घर से—

पिता—

"बस बेटा, बस, रहने दो,
जोरू के बनकर गुलाम यों मुझको खूब उलहने दो!
क्या न निकालोगे अब घर से इसीलिये तो जन्म लिया
है तुमने, मैंने भी अपना लाखों रुपया खर्च किया।
दोष तुम्हारा नहीं जरा भी, हुआ विधाता ही जब वाम;
सभी समय की यह खूबी है पुत्र-मोह का कटु परिणाम!

९. समस्या-पूर्तियाँ

स्फुट छंद

(१)

बुद्धि-बिबेक की जोति बुझी, ममता-मद-मोह-घटा घनी घेरी ;
है न सहारो, अनेकन हैं ठग, पाप के पन्नग की रहै फेरी।
है अभिमान को कूप इतै, उतै कामना-रूप सिलान की ढेरी ,
तैं चलु मूढ़ सँभारि अरे मन, राह न जानी है, रैनि अँधेरी।

(२)

भाल भलमसी को लगायो है तिलक लाल ,
लोचन-ललाई अनुराग बरसावती ;
आवत उतावले-से बावले मिलन हेत ,
साँवले, तुम्हारी प्रीति पूरी लखि पावती।
काजर कपोल दियो काहू, सो भलोई कियो ,
नाहीं तौ निगोड़ी कोऊ नजरि लगावती ,
आयो करौ भोर ही, दिखायो करौ सोभा, यह
भाव-भरी मूरति तुम्हारी मन-भावती।

(३)

केशव की कामकला, कल्पना कविंद-कृत ,
कविता 'सिंगार' की न हर्ष उपजावती

देव, दास, दूलह की कोमल पदावली हू
भूखे पेट कान मैं सुधा-सी नहीं नावती।
द्विजदेव, सेवक की रचना सरस शुद्ध
कठिन समस्या मैं न मन बहलावती;
अब तौ स्वदेश-स्वावलंब-स्वाभिमान-स्वत्व-
संयुत-स्वराज्य-पूर्ति भारत को भावती।

(४)

बहुत मुसाहबी मैं रहत रईसन की,
जीभ "जी हुजूर, हाँ हुजूर"-रट लावती;
बैंगन कुपथ्य पथ्य होत पल ही मैं तहाँ,
तथ्य वही, जो होय ठकुरसुहावती।
कोऊ चुप रहैं, कोऊ दबी-सी जबान कहैं,
कोऊ कछु कह्यो चहैं, पै न कहि आवती;
कोऊ नर धन्य, हैं निडर कहैं खरी-खरी,
हित की सुनावैं, ना सुनावैं मन भावती।

(५)

कंचुकी कसी-सी कसी उरज उतंगन पै,
चूनर सुरंग की बहार अंग गोरे मैं;
मेहँदी-ललाई की ललित छबि छाई, सब
तन की निकाई ना कहत बनै थोरे मैं।
सावन सोहावन मैं पाय मनभावन को,

हँसि-हँसि, हेरि-हेरि नेह के निहोरे मैं ;
मैन-मद-माती मनमोहिनी मुदित-मन ,
झुकि-झुकि, झूमि झूमि झूलत हिंडोरे मैं ।

(६)

आनन **स्वकीया** को निहारयो सपने हु नाहिं ,
परि **परकीया** मे कमायो है अजस क्यौं ?
गनिका के भेद मैं अपार खेद पायो सदा ,
जानत **सिंगार-रचना** को सरबस क्यौं ?
हाव-भाव भूल्यो नहीं तब तौं अजान, अब
कठिन **समस्या** हेरि होत है अलस क्यौं ?
देस की भलाई भला आई न जो तोहिं मन ,
नाहक बिताई **कविताई** मैं बयस क्यों ?

(७)

सकल बिगारे काज परिकै **सिंगार** माहिं ,
बीर न बन्यो रे कबौं धर्म-दया-दान ते ;
तन जो **बिभत्स** मल-पूरित असुद्ध, ताको
अद्भुत रूप दरसायो तू बखान ते ।
रौद्र-रूप काल की **भयानक** अनाई, तऊ
शांत न भयो है, कहौं निज अनुमान ते ;
हास्य मोहिं आवे लखि तेरी गति एरे मन ;
करुना न चाहे अजौं करुना-निधान ते ।

(८)

पाई परदेस सों पठाई पाती पीतम की,
प्रान लौटि मानौं मिले मृतक सरीर सों,
लाली खुसियाली की झलकि आई आनन पै,
सोभा भई पूरी वा कपूरी चारु चीर सों।
आए मनभावन के आवन के देखि दिन,
साजन सिंगार लागी हृदय अधीर सों;
छोरि-छोरि बारन सँवारन मैं लागी, मानौं
पिय-मन बाँधि लेहै जुलुफ-जँजीर सों।

(९)

अपना ही अंग हैं ये अंत्यज असहाय, इन्हें
गले न लगाया, तो अवश्य पछताओगे;
ममता के मंत्र से निर्ममता का विष जो
उतारा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे।
पक्षाघात-पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु,
उन्नति की दौड़ में कहाँ से जीत जाओगे?
साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नहीं,
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे।

(१०)

सबै ओर सुमुख प्रफुल्लित सरोज-तुल्य,
सरसी-[illegible] सकल समाज [illegible]

हँसि-हँसि, हेरि-हेरि नेह के निहोरे मैं ;
मैन-मद-माती मनमोहिनी मुदित-मन ,
झुकि-झुकि, झूमि झूमि झूलत हिंडोरे मैं ।

(६)

आनन **स्वकीया** को निहारयो सपने हू नाहिं ,
परि **परकीया** मे कमायो है अजस क्यौं ?
गनिका के भेद मैं अपार खेद पायो सदा ,
जानत **सिंगार-रचना** को सरबस क्यौं ?
हाव-भाव भूल्यौ नहीं तब तौं अजान, अब
कठिन **समस्या** हेरि होत है अलस क्यौं ?
देस की भलाई भला आई न जो तोहिं मन ,
नाहक बिनाई **कवितई** मैं वयस क्यौं ?

(७)

सकल बिगारे काज परिकै **सिंगार** माहिं ,
बीर न बन्यो रे कबौं धर्म-दया-दान तें ;
तन जो **बिभत्स** मल-पूरित असुद्ध, ताको
अदभुत रूप दरसायो तू बखान तें ।
रौद्र-रूप काल की **भयानक** अनाई, तऊ
शांत न भयो है, कहौं निज अनुमान तें ;
हास्य मोहिं आवै लखि तेरी गति एरे मन ,
करुना न चाहै अजौं करुना-निधान तें ।

(८)

पाई परदेस सों पठाई पाती पीतम की,
प्रान लौटि मानौं मिले मृतक सरीर सों,
लाली खुसियाली की झलकि आई आनन पै,
सोभा भई पूरी था कपूरी चारु चीर सों।
आए मनभावन के आवन के देखि दिन,
साजन सिंगार लागी हृदय अधीर सों;
छोरि-छोरि बारन सँवारन मैं लागी, मानौं
पिय-मन बाँधि लैहै जुलुफ-जँजीर सों।

(९)

अपना ही अंग हैं ये अन्त्यज "असह्य, इन्हे
गले न लगाय", तो अवश्य पछताओगे;
ममता के मंत्र से विषमता का विष जो
उतारा नहीं, जाति को तो जीवित न पाओगे।
पक्षाघात-पीड़ित समाज जो रहेगा पगु,
उन्नति की दौड़ में कहाँ से जीत जाओगे?
साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नहीं,
अगर अछूतों को न आप अपनाओगे।

(१०)

सबै ओर सुमुख प्रफुल्लित सरोज-तुल्य,
सरसी-सरिस सोभा सकल समाज की;

गुन-गुन गावैं गुन दर्शक मधुप, पाय
कविता-पराग भूले सुधि सब काज की।
सुकबि रसालय रसाल-से सफल सोहैं,
बात कछू और ही दिखाई देत आज की;
सम्मिलन सुकबि सुजानन को मेरी जान,
करत बराबरी रँगीले ऋतुराज की।

(११)

मुस्लिम, हिंदू सहोदर है मिलि भारत को दुख दूरि कराओ;
फूट को कारन कूट है नीति, परस्पर प्रीति-प्रतीति बढ़ाओ।
धर्म न होइ अधर्म किए, सिर फोरि बृथा जनि जन्नत जाओ;
मेल को 'खेल' बनाइ अहो, तुम देस के सीस कलंक न लाओ।

(१२)

सोचो जरा प्रण क्या था किया, कुछ ही दिन में उसको न भुलाओ;
जान भी देकर आन रखो, मत लाभ के लोभ में मान मिटाओ।
खद्दर ही की खरीद रहे, भले भोजन भी भरपेट न पाओ;
वस्त्र विलायती बेंच बजाजजी, देश के शीश कलंक न लाओ।

(१३)

हिंसा न हो, प्रतिहिंसा न हो, सतसाहस हो, चहे चाब चने रहो;
वार हजार सहो मन मार प्रहार से हार न होगी, तने रहो।
उत्तमता, ममता, समता, क्षमता हथियार लिए अपने रहो,
भ्रांति हरो अधिकार-विकार की, क्रांति करो, पर शांत बने रहो।

(१४)

होश हो जोश को काबू किए, कर रोष के दोष को दूर, तने रहो,
पस्त करो परतत्रता-पाप को, मस्त स्वतत्रता-प्रेम सने रहो।
सत्य-समानतावाद-उपासक, दीन-दुखी के बने अपने रहो ;
याद रहे बस तत्त्व यही—तुम भ्राति करो, पर शात बने रहो।

(१५)

अधिकार-विकार विवेक हरै, यह सीख भली है, भुलैयो नहीं,
प्रभुता प्रभु दीन्हीं कृपा करि मानव, दानव ह्वै इतरैयो नहीं।
बल पाय बचाइयो निर्बल को असहाय दबाय सतैयो नहीं ;
सहसा करिकै पछितैयो नहीं, कहु काहू को जीव दुखैयो नहीं।

(१६)

अपने हाथ कुठार, मारो अपने पैर में,
हँसता है ससार, समझो छूत अछूत क्यों ?

(१७)

सब हिंदू-सतान, राम-कृष्ण के भक्त है,
मानव सभी समान, फिर हैं छूत अछूत क्यों ?

(१८)

पैर समाज के निर्बल हैं, उसकी स्थिति तो फिर हो मजबूत क्यों ?
आगे बढ़ें किसके बल से ? दिन-रात न हों अरि से अभिभूत क्यों ?
निंदित है दुनिया-भर में, अभिनदित हो कपटी करतूत क्यों ?
है छुआछूत का भूत चढ़ा, समझेंगे नहीं फिर छूत अछूत क्यों ?

(१९)

सगम सों जड़ जंगम हू करि दीन्हें प्रफुल्लित आय तुरत हैं ;
कोपीन ही प्रिय, वल्कल-मडित, राखै नहीं गुरुमान दुरत है ।
काम सँवारत जीवन के, वन वास करै, मनभायो इकत है ;
रूखन हू को रसाल कियो उपकार-परायन सत बसत है ।

(२०)

कारिख न लाय मुँह प्रेम ही को घोरि रग,
वामैं करि दीन्ही सराबोर सब टोली है ;
गौरव-गुलाल सों सुशोभित भले कै भाल
सबसों प्रसन्नमन बोली प्रिय बोली है ।
हिंदू-मुसलिम, दोऊ क्रोध त्यों विरोधहू की,
धूरि है उड़ाई, प्रतिशोध की ठठोली है,
आज मिलामेंटी सों सफ़ाई भई भाइन की,
आई मनभाई सुखदाई हमैं होली है ।

(२१)

नागर अकेला, वेला यह तो मिलन ही की
चल, कर बेर ना रँगीली अब रत्ती भर ;
यों हरसिंगार त्यागि सानती मनावनी क्यों,
कीन्हों पियाबासा नीमराची की खबर पर ।
तू न कवौं सनकी यों, कुद भई कैसी मति,
अधर पै चद न रहैगी परी सूने घर ;

कम रख मान मान मेरी, अनजान एरी,
पाकर कदम सेव, पी पर न रूसा कर

(२२)

अर्थवती, पद कोमल त्यों, धुनि गूढ़, अलंकृत अगसँवारी।
शुद्ध, सुलच्छण, सूधी, सुवृत्त, सुजान सजावट पै बलिहारी।
रीझि रहै मन देखि सुवर्ण, प्रसाद सों देत सदा सुख भारी।
गरी-सी गुन-आगरी नागरी-रूप यों राजत हिंदी हमारी।
